"सम्पूर्ण रोगों को दूर करने वाला"
"शरीर को स्वस्थ रखने वाला"
"जठराग्नि को बढ़ाने वाला"
"योग विद्या का चमत्कार"

योग योगेश्वर महाप्रभु
श्री रामलाल जी महाराज की

अनुपम देन

जीवन तत्त्व साधन

(चित्रों तथा वैज्ञानिक व्याख्या के साथ) 20/-

तृतीय संस्करण ५१००

मूल्य—~~६.५०~~ (साढ़े छः रुपया)

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन
सवांई (आगरा)

❁ विषय सूची ❁

भूमिका

जीवन–तत्त्व साधन मेरे गुरुदेव परम कारुणिक योग-योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज की अमर देन है। संसार के वैज्ञानिकों ने विविध प्रकार के व्यायामों का सृजन किया किन्तु उन सभी व्यायामों में कुछ न कुछ कमियाँ अनुभव में आती हैं। जीवन–तत्त्व साधन एक इस प्रकार की अमर साधना है, जिसके करने से साधक के प्रत्येक अंग, स्नायु मण्डल एवं आशयों को पूरा–पूरा बल मिलता है। स्नायु मण्डल पूरी तरह से काम करने लगता है। वस्तुतः जीवन तत्त्व साधन काया–कल्प की विशुद्ध साधना है। मेरे गुरुदेव योग–योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने इसका सृजन तो वस्तुतः बनवासी साधुओं के लिए ही किया था। इस साधन के विधिपूर्वक करने पर करने वाले के पेट में एक इस प्रकार की अग्नि पैदा हो जाती है जो भूख से बेचैन बना देती है और प्रायः साधक को दिन और रात वह भूख लगी ही रहती है। यह स्थिति, जो साधक आश्रमों में शिक्षा प्राप्त करके अपनी इस साधना को उत्तरोत्तर बढ़ाते चले जाते हैं, उनको एक महीने में प्राप्त हो जाती है। जीवन-तत्त्व साधन की साधना के बल से प्राप्त हो जाने वाली वृक अग्नि के पैदा हो जाने पर अपना खान-पान, कच्ची सब्जी, कन्द मूल, फल आदि पर ही रखना पड़ता है और साधक वृक अग्नि के प्रभाव से दस-पन्द्रह एवं बीस-बीस सेर तक कच्ची सब्जियाँ, कन्दमूल, फल आदि खा

जाता है एवं बिना ही किसी प्रयास के उसको ये सब पाचन भी हो जाता है।

श्री प्रभु जी अपने मुखारविन्द से कहा करते थे कि जो साधक छः महीने तक जीवन-तत्त्व साधन से पैदा की हुई वृक अग्नि के बल से कच्ची सब्जियाँ कन्द मूल फल आदि का पाचन करता रहता है उसका अवश्य ही काया कल्प हो जाता है। उसका जीवन अन्न के अधीन नहीं रहता। कहीं भी वन-खण्ड में विचरता हुआ यदि वह किसी भी वृक्ष की दस-बीस, पचास पत्तियाँ खा लेता है तो उसको क्षुधा बाधित नहीं करती एवं शरीर का बल भी क्षीण नहीं होता। उत्साह निरन्तर बना रहता है। जीवन-तत्व साधन सभी प्रकार के रोगियों के लिए परम श्रेयस्कर एवं हित कर साधन है। इसी बात को विचार कर जीवन-तत्व साधन कीइन नौ(९)क्रियाओं को पुस्तक के रूपमें प्रकाशित करा देने का प्रयास किया। यह पुस्तक इससे पूर्व दो बार छप चुकी है। अबकी बार पुस्तक तीसरी बार मुद्रित कराने से पूर्व मेरे प्रिय शिष्य प्रोफेसर गिरीशदेव वर्मा, सिविल, लाइन बहराइच वालों ने विशेष व्याख्यान लिखकर अपने कई लेख 'सिद्धयोग' में प्रकाशित कराये जिनको पढ़कर मेरे मन में अत्यन्त आल्हाद बढ़ा और पुस्तक को उनकी इस विशेष व्याख्या के साथ प्रकाशित करा देना उचित समझा। प्रिय गिरीशदेव वर्मा का पुरुषार्थ बहुत ही सराहनीय है। उन्होंने प्रकृति के विशेष विश्लेषणों को समझाकर जीवन-तत्त्व की साधना से जहाँ-जहाँ जिन-जिन आशयों पर जितना-जितना उत्कृष्ट प्रभाव पड़ता है उसको बड़ी ही स्पष्टता के साथ समझाने का प्रयत्न किया है।

अतः सर्वसाधारण को चाहिए कि श्री गुरुदेव योग-योगेश्वर प्रभु

श्री रामलाल जी महाराज की अमर देन 'जीवन-तत्त्व साधन' की साधनाओं को करके अनुपम लाभ उठाएं। इस पुस्तक को पढ़कर प्रत्येक साधक यह भली प्रकार से जान जायेगा कि जीवन-तत्त्व साधन के क्या अनुपम लाभ हैं।

शेष शुभ !

२०-४-१९७४

चन्द्रमोहन
योग प्रशिक्षण केन्द्र
श्री सिद्ध गुफा
पो० सवांई (आगरा)
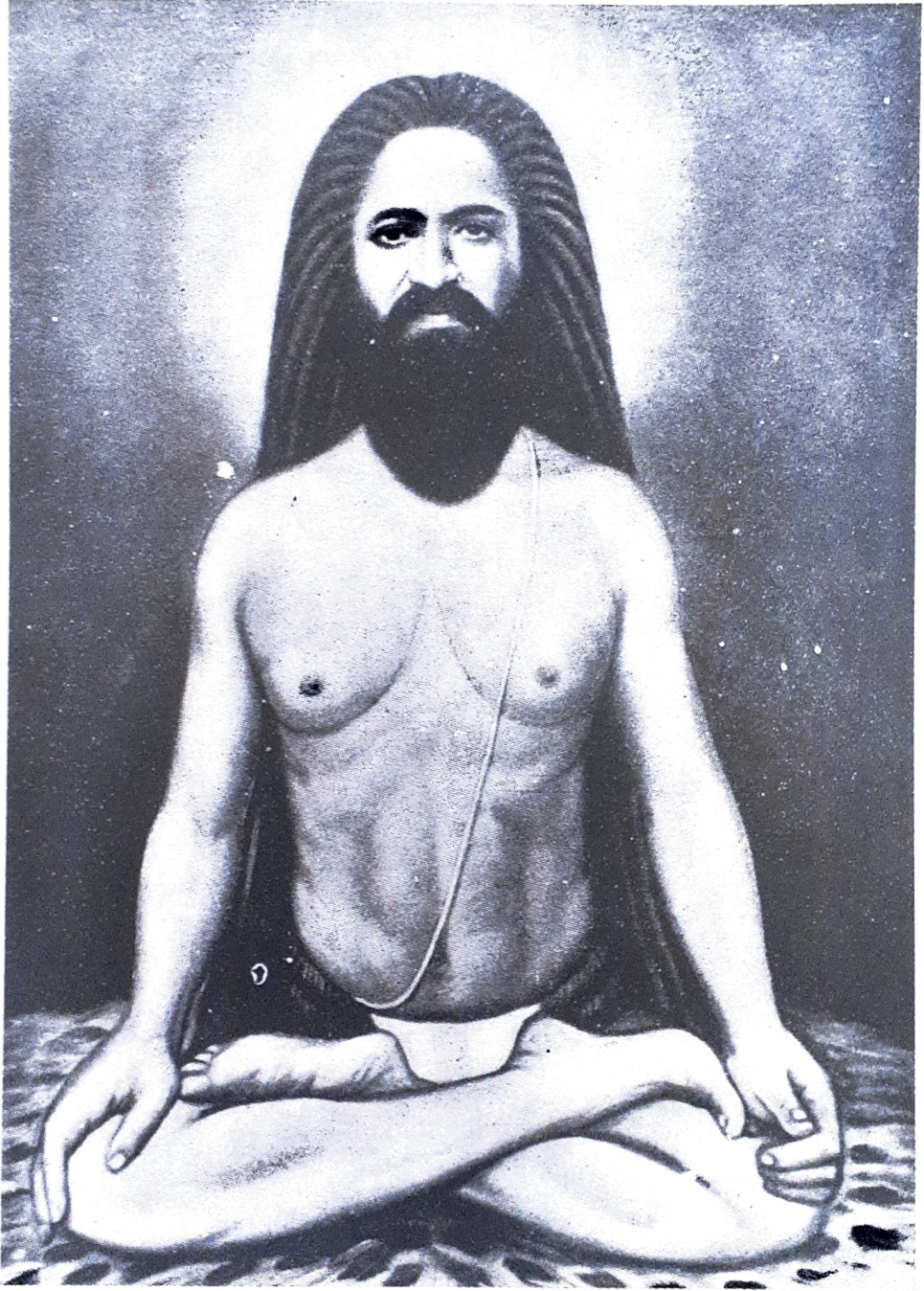
योग योगेश्वर अनन्त महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज

योग योगेश्वर अनन्त श्री विभूषित चन्द्रमोहन जी महाराज

जीवन तत्त्व साधन

जिस समय श्री गुरुदेव योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज नैपाल हिमालय से जीव-हित के लिये अर्वान मण्डल पर आये उस समय उन्होंने अपने मन से कुछ साधनों का आविष्कार किया जिन का उल्लेख हमारे प्राचीन योग ग्रन्थों में नही मिलता है। महाप्रभुजी के पास अनेक ऐसे लोग आया करते थे, जो किसी न किसी रोग से ग्रसित रहा करते थे। वे महाप्रभु जी के चरणों में अपने दुःख दर्द को निवेदन किया करते थे। महान करुणालय योग योगेश्वर महाप्रभु जी का चित्त द्रवीभूत हुआ और उन्होंने अपने मन से जीवन तत्त्व साधन को प्रगट किया जो सभी प्रकार के साध्य–असाध्य रोगों को दूर करने में राम वाण की तरह काम करने लगा। सवांई गांव में रहकर गुरुदेव इन साधनों का शिक्षण विधिवत् देते थे। इन क्रियाओं के अभ्यास से साधकों के सभी प्रकार के रोग दूर हो जाते थे। इन साधनों का छः मास तक विधि पूर्वक अभ्यास करने से मनुष्य का काया कल्प हो जाता है।

इन क्रियाओं के करने से भूख की अत्यन्त वृद्धि हो जाती है। आज कल जितने योगासन संसार में प्रचलित हैं उन सब का इन नौ क्रियाओं में समुच्चय है। वास्तव में यह साधन महाप्रभु जी की अद्भुत देन है। यदि कोई मनुष्य अन्य किसी व्यायाम को न करके केवल इन्हीं नौ क्रियाओं को करता रहे तो वह जीवन भर नीरोग व सुखी रहेगा। इन क्रियाओं को करने वाले के पेट की जठराग्नि अत्यन्त तीव्र हो जाती है और वे कच्चे पदार्थ भी पचा सकने में समर्थ हो जाते हैं। इन साधनों के करने वालों को बराबर भूख लगी रहती है इसी लिए इन क्रियाओं को करने वालों को व्रताचरण नहीं करना चाहिए।

जिस समय श्रीमहाप्रभुजी सवांई गुफापर रहते हुए इन जीवनतत्त्व

साधन की क्रियाओं को कराया करते थे उस समय उनके संकल्प से एक प्रकार की वृक अग्नि साधकों के पेट में पैदा हो जाती थी, जिसके कारण मनुष्य कई कई सेर तक कच्चे चने की दाल, कच्ची सब्जियां, दही-दूध अतुल मात्रा में सेवन कर जाया करते थे। श्री सिद्ध गुफा पर निवास करते हुए महाप्रभु जी ने यह साधन पूर्ण प्रबलता से कराया और परिणाम यह निकला कि वहाँ पर आस-पास सब्जी का मिलना दुर्लभ हो गया। कच्चा खाने वाले साधक भूख के कारण अत्यन्त व्याकुल रहते थे, पर वहाँ पर किसी भी भाव से खाने लायक सब्जी नहीं मिलती थी।

इस जीवन तत्त्व साधन में नौ क्रियायें हैं जिनका वर्णन आगे किया जावेगा। इनको दस वर्ष के बच्चे से लेकर ९० वर्ष के वृद्ध तक कर सकते हैं। इन क्रियाओं को किसी योग्य जानकार से सीखकर, अभ्यास बढ़ाना चाहिए क्योंकि पुस्तक के सहारे साधन करने में गलती हो जाती है। अच्छा यह होगा कि इन साधनों को सीखने के लिए योग प्रशिक्षण केन्द्र, श्री सिद्ध गुफा, सवांई जिला आगरा चले जाना चाहिए। वहाँ पर योग की समस्त क्रियाओं तथा जीवन तत्त्व साधन के प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था है। वहाँ पर सभी को निःशुल्क शिक्षा दी जाती है।

श्री सिद्ध गुफा श्री महाप्रभु जी का पुराना आश्रम है और एक सिद्ध स्थान है। गुफा की मिट्टी बड़ी पवित्र एवं प्रभावशाली है उसमें श्री प्रभु जी का वरदान है जो श्रद्धा पूर्वक इसका सेवन करते हैं उनकी कामनायें पूर्ण होती हैं। श्री सिद्ध गुफा, आगरा शहर से १५ मील है तथा एत्मादपुर तहसील से एक मील पश्चिम में है। उत्तर रेलवे के टूण्डला जंक्शन से एत्मादपुर तक पक्की सड़क है और दूरी चार मील

है। टूण्डला से हर प्रकार की सवारियाँ मिल जाती हैं। श्री सिद्ध गुफा पर बहुत से साधक रहते हैं वहाँ उनके रहने की समुचित व्यवस्था है।

नियम

जीवन तत्व साधन करने के लिए कुछ नियम हैं जिनका जान लेना आवश्यक है। वे इस प्रकार हैं :—

(१) इन क्रियाओं को नित्य आदर पूर्वक करना चाहिए। कभी नागा नहीं करना चाहिए।

(२) इन क्रियाओं को करने के लिए जो समय का विभाजन है उसी के अनुसार साधन करना चाहिए। जो क्रिया जितनी बार या जितने समय तक करने का विधान है उसे उतने समय तक करना चाहिए। शुरू में थोड़े से आरम्भ करना चाहिए और धीरे-धीरे पूर्ण समय तक अभ्यास बढा लेना चाहिए। कभी कम व कभी अधिक करने से पूर्ण लाभ नहीं होता है।

(३) इन क्रियाओं को करते समय घड़ी रख लेना आवश्यक है, घड़ी से कुछ दिन अभ्यास कर लेने पर गिनती के आधार पर भी साधन किया जा सकता है।

(४) यदि इन क्रियाओं को प्रातःकाल, मध्याह्न काल व सायं काल अर्थात नित्य तीन बार छः मास तक किया जावे तो मनुष्य का काया कल्प हो जाता है और उनके सभी रोग जड़ मूल से नष्ट हो जाते हैं। यदि तीन बार साधन करने का अवकाश न हो तो केवल प्रातःकाल करना चाहिए। इन क्रियाओं के करते समय लंगोट या

कोपीन अवश्य पहन लेना चाहिए ।

(५) इन क्रियाओं को प्रातः ब्राह्म मुहूर्त में करने से विशेष लाभ होता है । सूर्योदय से दो घण्टे पूर्व साधन आरम्भ कर देना चाहिए । समय में परिवर्तन नहीं करना चाहिए । नित्य ठीक समय से साधन आरम्भ कर देना चाहिए ।

(६) यदि कोई मनुष्य अन्य योगासनों के करने का अभ्यासी है तो उसे जीवन तत्व करने के बाद कुछ देर शवासन से लेटकर आराम कर लेना चाहिए और तदनन्तर अन्य आसन व्यायाम अथवा जप ध्यान करना चाहिए ।

(७) प्रातःकाल शौच–स्नान के बाद इन क्रियाओं को करना चाहिए । बहुत अधिक सर्दी हो अथवा प्रातः स्नान करने में असमर्थ हो तो भीगे वस्त्र से शरीर को पोंछ कर कपड़ा बदल लेना चाहिए ।

(८) शौच व दन्त धावन के बाद जल नेति की क्रिया कर लेना बड़ा लाभदायक होता है । यह क्रिया किसी जानकार से सीख लेनी चाहिए अथवा श्री सिद्धगुफा पर जाकर सीख लेनी चाहिए ।

(९) जीवन तत्व-साधन करने वालों को नाक से दूध पीना भी बड़ा लाभकारी सिद्ध हुआ है । यह दुग्धपान साधन करने के बाद करना चाहिए । सोंठ मिला हुआ गुनगुना दूध नाक से पिया जाता है । यह क्रिया भी सिद्ध गुफा पर जाकर सीखी जा सकती है । इससे सिर के समस्त रोग मिट जाते हैं और दूध पच जाता है । मुख से पीने के अनुपात में नाक से चौगुना लाभ करता है । स्नायु, मण्डल को भारी बल मिलता है । मनुष्य के शरीर में अद्भुत परिवर्तन दिखाई देने लगता है । मुख-मण्डल देदीप्यमान हो जाता है ।

(१०) जीवन तत्व क्रियाओं को करने के बाद पेट की अग्नि तीव्र हो जाती है अतः उस समय कुछ खा लेना आवश्यक है। यदि सम्भव हो सके तो नासिका से सोंठ मिला दूध पी लेना चाहिए। अथवा खीर, दलिया, भीगे अंकुरित चने आदि पदार्थ खा लेना चाहिए। चाय आदि न लिया जावे तो अच्छा है।

(११) जीवन तत्व साधन की छठवीं व सातवीं क्रियाओं का नाम बालमचलन व बच्चे का ध्यान है। जिस समय साधक इन क्रियाओं को करता है तो उसको बच्चे की स्पष्टाकृति दिखाई पड़ने लगती है और उसके मन में ऊँचा आल्हाद पैदा हो जाता है जिसके कारण वह सारे दिन बच्चों की तरह हंसता खेलता कूदता रहता है। इस प्रसन्नता के फलस्वरूप सभी प्रकार के शारीरिक व मानसिक रोग दूर हो जाते हैं।

(१२) जीवन तत्व साधन करने वालों को व्रत व उपवास नहीं करना चाहिए किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि उसे भक्ष्य अभक्ष्य आदि सभी पदार्थ खाते रहना चाहिये। सात्त्विक वपौष्टिक भोजन ग्रहण करना चाहिए और राजसिक व तामसिक भोजन का त्याग कर देना चाहिए। इसके सम्बन्ध में भगवान् श्री कृष्ण ने बताया है कि—

आयुः सत्त्व बलारोग्य,
सुख प्रीति विवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा,
हृद्या आहाराः सात्त्विक प्रियाः ।

—गीता १७/८

अर्थ -आयु, उत्साह, बल, आरोग्य, सुख प्रीति बढ़ाने वाले, तथा रसदार, चिकने; चिरस्थायी. दिल पसन्द सात्त्विक पुरुष को प्यारे होते हैं।

कट्वम्ल लवणात्युष्ण,
तीक्ष्ण रूक्ष विदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा,
दुःख शोकामय प्रदाः॥

—गीता १७/६

अर्थ—कड़वे, खट्टे; नमकीन, अति गरम, तीक्ष्ण, रूखे, दाह करने वाले तथा दुःख, शोक और रोग देने वाले आहार रजोगुणी पुरुषों को प्यारे होते हैं।

यातयामं गतरसं पूति,
पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं,
भोजनं तामस प्रियम्॥

—गीता १७/१०

अर्थ—ठण्डा नीरस दुर्गन्धित, बासी, जूठा और अपवित्र आहार तमोगुणी पुरुषों को प्यारा होता है।

योगियों को केवल सात्त्विक भोजन करना चाहिए। भोजन के सम्बन्ध में आजकल बहुत भ्रान्तियां फैली हुई हैं कौन सा भोजन नीरोगता व स्वस्थता को बढ़ाता है इसको समझ लेना चाहिए। ●

हम पिछले लेख में बता आए हैं कि जीवन तत्त्व साधन करने वालों को सात्विक आहार ग्रहण करना चाहिए । हमारा स्थूल शरीर अन्नमय कोश से बना है । जैसा हम अन्न खाते हैं वैसा हमारा मन बनता है । क्या खाना चाहिए, क्या नहीं खाना चाहिए कितना खाना चाहिए और कब खाना चाहिए आदि बातों को जान लेना आवश्यक है । इस विषय को बताने के लिए हम एक कहानी के माध्यम से समझा–ने का प्रयास करेंगे ।

महर्षि चरक जब आयुर्वेद के सारे ग्रन्थ लिख चुके, सब प्रकार की विधियों का, सब प्रकार की ओषधियों का, चिकित्साओं का वर्णन कर चुके और प्रचार भी कर चुके तो उनके मन में विचार आया कि चलूँ देखूँ लोग मेरे वताये मार्ग पर चलते भी हैं या नहीं । वे एक पक्षी का रूप धारण करके उड़े और वहाँ गये जहाँ वैद्यों का बाजार था । एक वृक्ष पर बैठ कर पक्षी ने ऊँची आवाज में कहा 'कोऽरुक' अर्थात् कौन रोगी नहीं है । एक वैद्य ने पक्षी को देखा, उसकी बात को समझा और कहा–जो 'च्यवनप्राश' खाता है वह रोगी नहीं है । एक और वैद्य बोला जो 'चन्द्र प्रभा वटी' खाता है वह रोगी नहीं है ।' तीसरा वैद्य बोला जो 'बंग भस्म' खावे वही नीरोग है । चौथे वैद्य ने कहा यह सब गलत बातें हैं । जब तक 'लवण भास्कर' चूर्ण नहीं खाओगे तब तक पेट ठीक नहीं होगा और जब पेट ठीक नहीं होगा तब तक रोग बना रहेगा । चरक ने यह सब सुना तो दुखित हो गये । उन्होंने सोचा कि मैंने इतना बड़ा शास्त्र रचा तो क्या इसलिए कि मनुष्य के पेट को दवाइयों का गोदाम बना दिया जावे । मेरा परिश्रम निष्फल गया । वे दुखी होकर उड़े । कई स्थानों पर गये । हर स्थान पर उन्होंने कहा 'कोऽरुक' । कहीं से भी ठीक उत्तर नहीं मिला । अन्त में

वे एक उजाड़ सुनसान स्थान पर एक सूखे वृक्ष की शाखा पर बैठ गये। उसके पास ही एक नदी बहती थी। नदी में नहाकर प्रसिद्ध वैद्य वाग्भट्ट महाराज बाहर आ रहे थे। चरक ने उन्हें पहिचाना और पुकार कर कहा 'कोऽरुक' वाग्भट्ट चलते-चलते रुक गये, आँखें उठा कर पक्षी की ओर देखा और समझ गये। वे बोले 'हित भुक् मित् भुक् ऋत् भुक।' चरक इन शब्दों को सुनते ही बृक्ष के नीचे आ गये और पक्षी रूप छोड़कर वाग्भट्ट के सामने खड़े होकर कहा-वैद्यराज तुमने ठीक समझा है।

परन्तु इस हित भुक्, मित भुक्, ऋत् भुक् का क्या अर्थ है इसे अब बताऊँगा। जो मनुष्य नीरोग रहना चाहे और अच्छे स्वास्थ्य का इच्छुक हो, वह इन शब्दों को अपने घर की दीवाल पर लिखवा ले। इनका सदैव ध्यान रखे और इन उपदेशों का पालन करे। यह तीन शब्द हमारे आहार सम्बन्धी समस्त नियमों को बताते हैं।

हित भुक्

भोजन हमारे शरीर के लिए हितकारी है उसी को प्रयोग में लाकर हम स्वस्थ रह सकते हैं, इसी को हित भुक् कहते हैं। आज विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि स्वास्थ्य को कायम रखने के लिए किन-किन पदार्थों को खाना चाहिए और कौन-कौन भोजन त्याज्य है। आदर्श भोजन में १४ तत्व अवश्य होना चाहिए। वे निम्न-लिखित हैं।

१-आक्सीजन

टमाटर किशमिश मुन्नका, आलू आदि में पाया जाता है। यह मस्तिष्क की शक्ति को बढ़ाने वाला है।

२. हाईड्रोजन

हरे ताजे फल, साग, तरकारी दूध आदि में पाया जाता है। जीवन को शक्ति प्रदान करता है तथा भीतरी सफाई करता है।

३- नाईट्रोजन

दूध, मट्ठा, सेम, आड़ू, बादाम आदि में पाया जाता है। यह आक्सीजन को अधिक गर्मी से सुरक्षित रखता है।

४- कार्बन

आलू, अनाज, सूखे मेवे, अंगूर, सेब आदि में पाया जाता है। यह आक्सीजन में मिला रहता है और गर्मी बनाए रखता है।

५- कैल्शियम

गेहूँ, दूध, नीबू, गोभी, मट्ठा आदि में पाया जाता है। यह हड्डियों को मजबूत करता है।

६- फास्फोरस

नारियल, अनन्नास, जैतून आदि में पाया जाता है। यह रीढ़ तथा मस्तिष्क की रक्षा करता है।

७- सल्फर

पातगोभी, किशमिश, मुनक्का, फूल गोभी आदि में पाया जाता है। यह विजातीय द्रव्य को शरीर से निकाल कर बाहर करता है।

८- सोडियम

मकोय आदि में पाया जाता है। कार्बन की अधिकता रोकता है तथा लार को बढ़ाता है।

९- फ्लोरीन

गोभी, बकरी के दूध नारियल आदि में पाया जाता है। यह मोटापे को कम करता है और शरीर को दुर्बल होने से बचाता है।

१०- क्लोरीन

लाल गाँठ गोभी, शलजम आदि में पाया जाता है। हड्डियों को दृढ़ बनाता है और आँखों की रक्षा करता है।

११- लोहा

गाजर, पालक, चोकर आदि में पाया जाता है यह खून को बढ़ाता है और रोगों से बचाता है।

१२. पोटेशियम

जैतून का सूखा फल, पिपरमेन्ट में पाया जाता है।

१३. मैगनीशियम

सन्तरा, खजूर, नारियल आदि में पाया जाता है। यह खून को खारी बनाता है, दाँतों को मजबूत बनाता है और गहरी निद्रा लाता है।

१४. सिलिकिन

जई, जौ का दलिया, चावल, कच्चा दूध, आलू का छिलका, चोकर आदि में पाया जाता है। यह बुद्धि को बढ़ाता है और शरीर को विषैले प्रभाव से बचाता है।

निम्नलिखित सात चीजें न्यूनाधिक भोजनों में पाई जाती हैं। उनका उचित मात्रा में प्रयोग, शरीर की शक्ति को स्थिर रखने के लिए जरूरी है। वैज्ञानिकों ने अन्वेषण करके यह बता दिया है कि किस पदार्थ में निम्न चीजें किस मात्रा में होती हैं और उनका प्रयोग किस मात्रा में करना चाहिए।

१—प्रोटीन

शरीर को बढ़ाने और बनाने वाले अंग दूध, घी, दही, अकुंरित चना, गेहूँ, दलिया से मिलता है।

२- चिकनाई

इसका काम गरमी और शक्ति पैदा करना है। जो दूध-घी मक्खन व तेल से मिलता है।

३- कार्बोहाइड्रेट

इसका काम भी गर्मी व शक्ति देना है। जो अनाजों, मीठे फलों व खजूर में मिलता है।

४- मिठास

शक्कर, शहद, किशमिश, मुनक्का, अंगूर व अन्य मीठे फलों

से मिलता है।

५- नमक

सब्जी व तरकारियों से जो नमक मिलता है वही असली नमक है।

६- पानी

शरीर को स्वस्थ रखने के लिए पानी की बड़ी अवश्यकता है

७- विटामिन

इनकी व्याख्या आगे की गई है।

विटामिन

नये विज्ञान में विटामिनों को बहुत ऊँचा दरजा दिया गया हैं। इनकी कमी से नाना प्रकार के रोग हो जाते हैं। मुख्य विटामिन ए. बी. सी. डी. व ई. हैं।

विटामिन ए०

यह शरीर को बढ़ाता हैं, फेफड़ों को बल देता हैं छूत के रोगों से बचाता है। आँखों में रोग होने से रोकता है। इसकी कमी से नाक, कान, आँख, फेफड़े व दांत के रोग हो जाते है। यह दूध, घी, मक्खन, पनीर, पालक, बथुआ, गोभी, शलजम के पत्ते हरी धनियां व सहजना की पत्तियों में पाया जाता है। च्यवनप्राश में भी यह विटामिन रहता है। हरी धनिया में यह इतना होता है कि एक सौ

ग्राम हरी धनिया खाने से २२ घन्टों के लिए विटामिन ए मिल जाता है।

विटामिन बी०

हृदय, मस्तिष्क व नसों को स्वस्थ व ताजा रखता है, भूख बढ़ाता है, रगों, पट्ठों और आँतों को शक्ति देता है। बेरीबेरी रोग को दूर करता हैं। इसकी कमी से मुँह का स्वाद बिगड़ जाता हैं। बदहजमी, दस्त, कब्ज व पेट का दर्द हो जाता है। खून की कमी हो जाती है और ऐनीमिया रोग हो जाता है। यह गेहूँ, जई, (oatmeal) मकई, साठी चावल, सोयाबीन, मटर, दाल, चना, टमाटर, मूंगफली, अखरोट, खजूर, पपीता, अमरूद में पाया जाता है। जई, सोयाबीन व मूंगफली में इतना होता है कि १०० ग्राम खाने से १४ घन्टे के लिए विटामिम बी. मिल जाता है। जीवन तत्व साधन करने से यह बिटामिन बहुत बढ़ जाता है और पेट, रगों व पट्ठों के अनेक रोग दूर होकर भूख लगने लगती है, खाना हजम होने लगता है और खून बढ़ने लगता है। बिटामिन बी. के कई भाग हैं। अभी तक १२ का अनुसंधान हो चुका है।

विटामिन सी०

रक्त को शुद्ध करता है। हड्डियों व दाँतों को शक्ति देता है। छूत के रोगों से बचाता है। इसकी कमी से भूख कम लगती है। खून सूख जाता है। साँस फूलने लगती है। दांत व मसूड़ों में पीव पड़ जाता है। हाथ-पैरों में दर्द और जोड़ों में सूजन आ जाती है यह सबसे अधिक आंवला में पाया जाता है। १०० ग्राम आंवला खाने से १०० घन्टे के लिये विटामिन सी. मिल जाता है। नीबू, नारंगी,

नासपाती, टमाटर, अंगूर, सेव आदि फलों में भी पाया जाता है। जीवन तत्व साधन करने से यह विटामिन भी बढ़ जाता है।

विटामिन डी०

हड्डियों को दृढ़ तथा स्वस्थ रखता है। बच्चों को अत्यधिक लाभदायक है। इसकी कमी से कमजोरी चिड़चिड़ापन तथा हड्डियों में निर्बलता आती है। चेहरा फीका पड़ जाता है। दौरे की बीमारी हो जाती है। सर्दी-जुकाम जल्दी-जल्दी होने लगता है। शरीर की बाढ़ रुक जाती है बच्चों को सूखा रोग हो जाता है। हाथ-पैर दुबले हो जाते हैं। यह सूर्य की धूप में अधिकता से पाया जाता है। दूध, घी, गाजर, मैंथी, गाजर पपीता में भी पाया जाता है

विटामिन ई०

स्त्रियों के बांझपन तथा गर्भपात को रोकता है। मनुष्य में सन्तान उत्पत्ति की शक्ति देता है। इसकी कमी से पेशाब के स्थान पर बुरा प्रभाव पड़ता है। यह गेहूँ तथा दूसरे अनाजों के अंकुरों में, हरे सागपात, ताजे दूध, मक्खन मटर के छोटे पौधे शकर कन्दी और चोकर में पाया जाता है।

जीवन तत्व साधन करने वालों को विटमिन ए बी सी. डी. व ई. पर्याप्त मात्रा में मिलने लगता है। और उसका स्वास्थ्य ठीक हो जाता है। शक्ति व उत्साह में वृद्धि हो जाती है।

भोजन को नापने का एक उपाय बताया गया है जिसे कैलोरी कहते हैं। हर मनुष्य को चौबीस घन्टे में २५०० से ३००० कैलोरी का भोजन करना चाहिए। विज्ञान ने यह बता दिया है कि किस भोजन के

पदार्थ में कितने तत्व, गुण व कैलोरी है। अर्थात् किसी खाद्य पदार्थ को एक छटाँक खाने से कितनी देर तक उसका प्रभाव रहता है । जैसे १०० ग्राम गेहूँ खाने से हमें ढाई घन्टे के लिये प्रोटीन, एक घन्टे के लिये कैलशियम, ४/३० घन्टे के लिये फासफोरस, ३/३० घन्टे के लिये लोहा, १२ मिनट के लिये विटामिन ए. और ८ घन्टे के लिये विटामिन बी. १ तथा १६७ कैलोरी शक्ति मिलती है। प्रति १०० ग्राम खाद्य पदार्थों के गुण तत्व घन्टों में दिये गये हैं जो किसी भी आहार पुस्तिका में देखे जा सकते हैं और उसी के अनुसार हम अपने भोजन नापकर जान सकते हैं कि हम भोजन करते हैं वह पर्याप्त गुण, तत्व व कैलोरी युक्त है या नहीं।

यदि हमारा भोजन ३००० कैलोरी तथा पर्याप्त गुण तत्व व विटामिन देने वाला है तो हम 'हित भुक' के अनुसार भोजन करते हैं। अन्यथा हमको अपने भोजन में परिवर्तन करना चाहिये।

अब आगे 'मित भुक' के सम्बन्ध में बतायेंगे।

मित भुक्

मित भुक् का अर्थ है कि उचित मात्रा में खाओ, मलाई बहुत ताकत देती है तो आप दो सेर मलाई ही खा जायें, तीन सेर रबड़ी पेट में डाल लें या सेर भर मक्खन ही चट कर जायें तो इससे शरीर को लाभ के स्थान पर हानि होगी। इसलिए वाग्भट्ट ने बताया कि मित भुक्, अच्छी वस्तुएं खाओ मगर उचित मात्रा में खाओ। मार्यादा में रहकर खाओ। भगवान ने गीता में कहा है कि :—

युक्ताहार विहारस्य, युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य, योगो भवति दुःखहा॥

अर्थ :—

जब युक्त सोना–जागना, आहार व विहार हों।
हो दुखहारी योग जब, परिमित सभी व्यवहार हों॥

हर समय भी खाते रहने से भी काम नहीं बनेगा। आजकल का फैशन हो गया है कि विस्तर से उठते चाय चाहिए, फिर काफी फिर नाश्ता, फिर लच, फिर चाय, फिर रात का खाना, सोते समय दूध और न जाने क्या-क्या यह पेट एक डेगची है। इसमें एक सीमा से अधिक नहीं आता। किस समय क्या डालना चाहिए यह सोचकर डालना चाहिए। हर समय डालते रहमे से काम नहीं चलेगा।

एक माँ दाल बना रही थी। चूल्हे पर डेगची रख कर दो मुट्ठी

दाल उसने डेगची में डाल दी। आग जलने लगी। दाल अभी कुछ ही पकी थी कि दो अतिथि आ गये। उसने दो मुट्ठी दाल डेगची में डाल दी। अभी यह दूसरी दाल अधपकी ही थी कि तीन अतिथि और आ गये। उसने तीन मुट्ठी दाल और डेगची में डाल दी। अब इस दाल का क्या बनेगा। क्या वह कभी पकेगी। कुछ अधिक पक जायेगी कुछ थोड़ी पकेगी और कुछ कच्ची रह जायगी। यह पेट भी तो एक डेगची है। हर समय इसमें डालते रहने से हानि होगी। इसलिए वाग्भट्ट ने कहा कि मित भुक् खाओ, हितकारी भोजन खाओ मगर मर्यादा के अनुसार खाओ।

ऋत भुक्

केवल हित भुक् और मित भुक् से कार्य नहीं बनता। यदि सदैव नीरोग व स्वस्थ रहना है तो ऋत भुक् का पालन करना होगा। ऋत का अर्थ सत्य अर्थात् सत्य की कमाई से प्राप्त भोजन करो। जो लोग पाप का अन्न खाते हैं या रिश्वत, झूठ भ्रष्टाचार से प्राप्त पैसों का भोजन करते हैं, कभी स्वस्थ नहीं रह सकते। पवित्र आत्माओं में ऐसे भोजन का प्रभाव तुरन्त दिखाई देता है। क्योंकि सफेद चादर पर पड़ा धब्बा तुरन्त दिखाई पड़ जाता है।

हरिद्वार के आश्रम में एक महात्मा ठहरे हुए थे। एक योग साधक उसी पास के एक कमरे में रहकर साधना करता था। एक दिन वह साधक महात्मा जी के पास आया और जोर-जोर से रोने लगा। महात्मा जी ने पूछा कि क्या हुआ आपको! वह बोला महाराज जी! मेरी साधना ही नष्ट हो गयी। पूछने पर पता लगा कि वह योग साधक

बहुत दिनों से आसन, प्राणायाम, ध्यान व धारणा की सीढ़ी पर आगे बढ़ रहा था। घन्टों ध्यान करता व आनन्द विभोर रहता। परन्तु एक रात उसके साथ एक अद्भुत घटना घटी। उसने रोते हुये बताया कि मैं ध्यान में बैठा था कि ऐसा प्रतीत हुआ कि रोशनी में लाल दुपट्टे वाली एक लड़की खड़ी है। मैंने घबड़ा कर आँखें खोल दीं। समझा कुछ भूल हो गई है, फिर ध्यान से ज्योति को देखा परन्तु वह लड़की अब भी वहीं थी। मैं उसे जानता नहीं, परन्तु बार-बार मेरे सामने आकर खड़ी हो जाती है। मैंने बार-बार मुँह हाथ धोकर प्राणायाम व ध्यान करने का प्रयत्न किया है, बार-बार उसे हटाने का प्रयास किया है परन्तु वह तस्वीर नहीं हटती है। पता नहीं मुझे क्या हो गया है। महात्मा जी ने पूछा—किसी बुरे व्यक्ति की संगति में तो नहीं बैठे कोई बुरी पुस्तक तो नहीं पढ़ी। उसने कहा कि ऐसा कुछ नहीं किया। महात्माजी ने कहा कि आश्रम के बाहर तो नहीं गये थे। वह बोला कि एक भण्डारे में गया था। वहाँ खाना खाया था। महात्मा जी ने कहा कि जाकर पता लगाओ कि किसने भण्डारा दिया था और क्यों दिया था। उसने पता लगाकर बताया कि कलकत्ते के एक सेठ जी हैं, उसने अपनी लडकी को एक बूढ़े के पास दस हजार रुपये में बेच दिया है। दो हजार रुपया लेकर वह हरिद्वार आया है कि पाप का प्रायश्चित्त करने के लिये भण्डारा कर दे। महात्मा जी ने इस बात को सुन कर कहा कि यही वह लड़की है जो तुम्हें दिखाई देती है। तुमने जो कुछ खाया वह पुण्य भाव से दिया हुआ दान नहीं था। पाप की कमाई का एक भाग था। उस हत-भाग्य लड़की का मूल्य। जब तक वह अन्न तुम्हारे शरीर से निकल नहीं जायगा तब तक उस दुखी लड़की का दिखाई देना बन्द नहीं

होगा। उस साधक ने रोते हुये पूछा कि महात्मा जी मुझे कोई उपाय बताइये क्योंकि मेरा चित्त बहुत अशान्त हो रहा है। महात्मा जी ने कहा कि किसी वैद्य से रेचक ओषधि लेकर खालो ताकि वह पाप का अन्न तुम्हारे शरीर से निकल जावे। तीन दिन तक कोई आहार न लो, कवल पंचगव्य पीकर रहो। उसने ऐसा ही किया और तब उसका चित्त शान्त हुआ।

यह है पाप का अन्न खाने का परिणाम। पाप कमाई का आहार लेने से आत्मा की अधोगति हो जाती है । आगे बढ़ता हुआ मनुष्य पीछे हट जाता जाता है। मन की शान्ति मिट जाती है। चित्त उद्विग्न रहता।

एक वीतराग महात्मा जंगल में रहकर योगानुष्ठान किया करते थे और त्याग व तपोमय जीवन व्यतीत करते थे। धीरे-धीरे उनकी ख्याति फैलने लगी और आस-पास गाँव व नगर के लोग उनके पास दर्शनार्थ आने लगे। महात्मा जी ने यह नियम बना लिया था कि वे केवल सायं काल चार बजे से ६ बजे तक दर्शनार्थियों से मिलते थे और शेष समय अपने साधन में लगे रहते थे।

कुछ काल बाद उस प्रदेश के राजा ने उन महात्मा के बारे में सुना और उनके दर्शनार्थ उस जंगल को गया। महात्मा जी तो विरक्त थे ही उनके सामने क्या राजा क्या प्रजा सभी बराबर थे। उन्होंने सभी को समान रूप से उपदेश दिया। राजा उनके दर्शन व सत्संग से अत्यधिक प्रभावित हुआ और बहुधा उनके आश्रम को जाने लगा।

एक बार राजा अपने परिवार के सभी लोगों को साथ लेकर

किया कि महाराज किसी दिन आप नगर में चलकर हमारे भवन को भी पवित्र कर दीजिए । महात्मा जी ने कहा कि राजन ! हम तो उदासी साधु हैं। हमको नगर गांव या राजभवन से क्या मतलब है। हम तो इसी कुटिया में आनन्द मनाते हैं। राजा और रानी ने महात्मा जी के चरण पकड़ लिए और आग्रह किया कि महाराज ! आपके चरण रज से हमारा निवास स्थान पवित्र हो जायगा अतः आप एक बार राजभवन तक चलने का कष्ट अवश्य करें। महात्मा तो सहज चित्त व दयालु हृदय के होते हैं। द्रवित हो गये और कहा कि किसी दिन आजावेंगे।

कालान्तर में महात्मा जी ने राजभवन जाने का निश्चय किया और राजा को सूचना भेज दी। फिर तो राजभवन में स्वागत की तैयारी होने लगी और महल को विशेष रूप से सजाया जाने लगा। नियत तिथि पर महात्मा जी पधारे। उनका खूब स्वागत किया गया और उन्हें राजभवन के एक विश्रामदायक कक्ष में ठहराया गया। महात्मा जी की हर सुविधा पर विषेश ध्यान दिया गया। राजा व उनके परिवार के लोग सदैव उनकी सेवा-सत्कार में लगे रहे। सायंकाल उन्हें सुन्दर से सुन्दर भोजन, फल, रसादि पदार्थ दिये गये। रात देर तक राज भवन के सभी लोग महात्मा जी के सत्संग से लाभ उठाते रहे।

महात्मा जी प्रातः ब्राह्म मुहूर्त में उठे। उनके शौच स्नान की व्यवस्था पास ही में थी । उन्होंने स्नानघर में बड़े आनन्द के साथ स्नान किया और जब उसमें से चलने लगे तो उनकी दृष्टि दीवार पर टंगे एक हार पर पड़ी। हाथ में लेकर देखा तो वह हीरों का बहु-मूल्य हार था। महात्मा जी ने सोचा कि इसे ले चला जाय। केवल

इस हार से हमारा जीवन आनन्द पूर्वक कट जावेगा और हमको भिक्षा मांगने का कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा । ऐसा सोचकर उन्होंने हार अपनी झोली में छिपा लिया और अपने कमरे में आ गये ।

प्रातः महात्मा जी की विदाई का अवसर आ गया । राज परिवार के सभी लोगों ने महात्मा जी को आदर के साथ दूर तक जा कर विदा किया । राजा ने बार-बार आग्रह किया कि महाराज ! आप यदाकदा आते रहियेगा और दास पर कृपा बनाये रखियेगा ।

विदाई के कुछ देर बाद रानी को अपने हार की सुध आई और वे स्नानागार में गईं तो वहाँ हार का पता नहीं था । फिर अपने कमरे व अन्य स्थानों पर तलाश किया मगर हार का पता नहीं चला । यह खबर राजभवन में फैल गई और बड़ी सरगरमी से हार की तलाश होने लगी । रानी ने कहा कि हार इसी स्नान घर में टांग दिया था । किसी नौकर ने ही चुरा लिया है । राजा ने कहा कि स्नान घर में केवल महात्मा जी गये थे और कोई गया ही नहीं । महात्मा जी तो हार ले नहीं जा सकते । फिर तो नौकरों पर डाँट पड़ने लगी और हार को ढूँढ़ने के लिए विशेष कर्मचारी नियुक्त कर दिए गये ।

उधर महात्मा जी कुटिया पर पहुँचे तो उनके पेट में दर्द उठा और वे शौच के लिए दौड़े । उन्हें दस्त आने लगा और वे बार-बार शौच के लिए भागने लगे । सायं-काल तक उन्हें पचासों दस्त आये और तब उनका पेट थमा । सांय-काल उनका चित्त स्वस्थ हुआ तो उन्होंने झोली से हार निकाला और उसे लेकर राज भवन की ओर दौड़े और वहाँ जाकर द्वारपाल से कहा कि राजा को सूचना दे दो

कि महात्मा जी आए हैं। राजा ने जब सुना कि महात्मा जो पधारे हैं तो दौड़ा हुआ आया और उन्हें महल के भीतर ले गया और पूछा कि महाराज ! आप तो प्रातः ही यहाँ से गये थे, फिर सायं को कैसे आने की कृपा की, जो सेवा हो बताईये मैं उसे पूरा करने को तैयार हूँ।

महात्मा जी ने झोली में से हार निकाला और राजा को देते हुए कहा कि राजन ! यह हीरों का हार आपके स्नानघर में टँगा था। जब मैं स्नान करके चलने लगा तो इसको चुरा लिया और झोली में रखकर अपने आश्रम पर ले गया। किन्तु वहाँ पहुँचने पर मुझे दस्त आने लगे और दिन भर दस्त आते रहे। सायंकाल को जब चित्त शान्त हुआ तो मैं इस हार को वापस करने को दौड़ा आया हूँ। राजा ने कहा कि महाराज यह हार क्या वस्तु है। यह सम्पूर्ण राजपाठ आप का है। जब आप हार ले ही गये थे तो उसे वापस करने की क्या आवश्यकता थी। महात्मा जी ने कहा कि मैं एक वीतराग उदासी साधु हूँ। मुझे हार आदि से क्या मतलब है। मुझे आश्चर्य हो रहा है कि मै इसे क्यों चुरा ले गया। आप अपने भन्डारी को बुलाइये और पता लगवाइये कि जो भोजन मुझे रात में कराया गया था वह किस प्रकार था और कहाँ से प्राप्त हुआ था। भण्डारी को बुलाकर पता लगाया तो मालूम हुआ कि और सब पदार्थ तो राज्य ही के उत्पादन थे, केवल चावल बाहर का था। भन्डारी ने कहा कि भन्डार-खाने में चावल अच्छा नहीं था और उस दिन एक चोर पकड़ा गया था और उसके पास चोरी का एक बोरा महीन चावल बरामद हुआ था। वह चावल बहुत बढ़िया किस्म का था। अतः महात्मा जी के लिए मैंने उसी चावल के कई व्यञ्जन पकाये थे।

इस बात को सुनकर महात्मा जी ने कहा कि राजन् ! देखा आपने, चोरी का अन्न खाने से मुझमें भी चोरी की वृति आ गई। जब तक वह चावल मेरे पेट से निकल नहीं गया मेरी बुद्धि शुद्ध नहीं हुई।

यह है पाप का अन्न खाने का परिणाम। इसीलिए वाग्भट्ट ने कहा कि 'हित भुक्' व 'मित भुक्' के साथ-साथ 'ऋत भुक्' भी होना चाहिए और तभी मनुष्य तन व मन से स्वस्थ रह सकता है।

'जीवन तत्त्व साधन' करने वालों को उपर्युक्त स्वास्थ्य मन्त्र सदैव याद रखना चाहिए। शरीर की स्वस्थता के साथ-साथ मन की स्वस्थता व स्वच्छता भी आवश्यक है।

जीवन तत्त्व साधन की क्रियायें एक प्रकार के योगासन हैं और महर्षि पतञ्जलि ने बताया है कि योगासनों को करने के पहले यम नियम का पालन अवश्य करना चाहिए। यह पाँच हैं अर्थात् अहिंसा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह। नियम पाँच हैं अर्थात् शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान। इन यम नियमों के सम्बन्ध में हम कभी विस्तार से बतायेंगे। अब आगे जीवन तत्त्व साधन की क्रियाओं का विधान उनका वैज्ञानिक आधार स्थूल व सूक्ष्म शरीर पर प्रभाव तथा रोगों से मुक्ति आदि के सम्बन्ध में बतायेंगे।

सर्वोत्तान

(जीवन तत्त्व साधन की प्रथम क्रिया का नाम है 'सर्वोत्तान') [केवल तीन बार, अधिक से अधिक दो मिनट तक]

योग शास्त्रों में शवासन का बड़ा महत्व बतलाया गया है। सभी प्रकार के आसन व्यायाम के बाद शवासन करने का विधान है। स्वभावतः जब मनुष्य श्रम करते-करते थक जाता है तो हाथ पैरों को तान कर अँगड़ाई लेता है और उसको बड़ा आराम मिलता है। थके हुए अंगों को विश्राम देने का ढंग शवासन है। शवासन जितना कहने-सुनने में आसान जान पड़ता है उतना करने में आसान नहीं है। शवासन करते समय सभी अंग प्रत्यंग ढीले हो जाने चाहिए मन भी निर्विषय हो जाना चाहिए। जब तक ऐसा नहीं होता तब तक शवासन से पूरा लाभ नहीं उठाया जा सकता।

शवासन का परिमार्जित रूप ही सर्वोत्तान है जिसे महाप्रभु जी ने निकाला है इसको करने से शरीर में स्फूर्ति व नव जीवन प्राप्त हो जाता है। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जीवन तत्त्व साधन की अन्य क्रियाओं के करने के पहले इसे कर लिया जाता है। इससे अन्य क्रियाओं के करने में आसानी होती है।

सर्वोत्तान में दो क्रियायें हैं। तनाव व शिथिलीकरण अर्थात् 'Tension & Relaxation' यूरोपीय योग साधकों ने भी शवासन करने के लिए यही तरीका निकाला है कि चित्त लेट कर एक-एक अंगों को ताना जाय और फिर ढीला छोड़ा जाय। इस तरह एक-एक हाथ, पैर, पेट, छाती गर्दन को बारी-बारी से ताना जाय
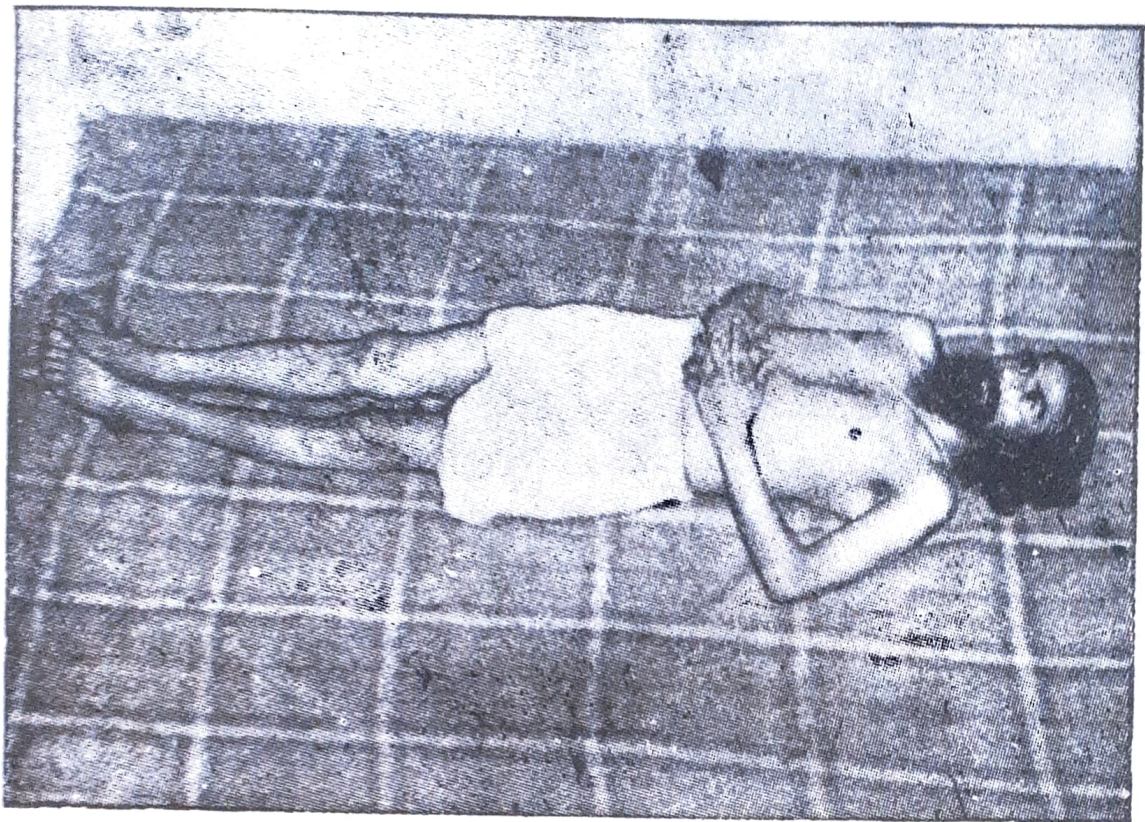
सर्वांत्तान पहला रूप
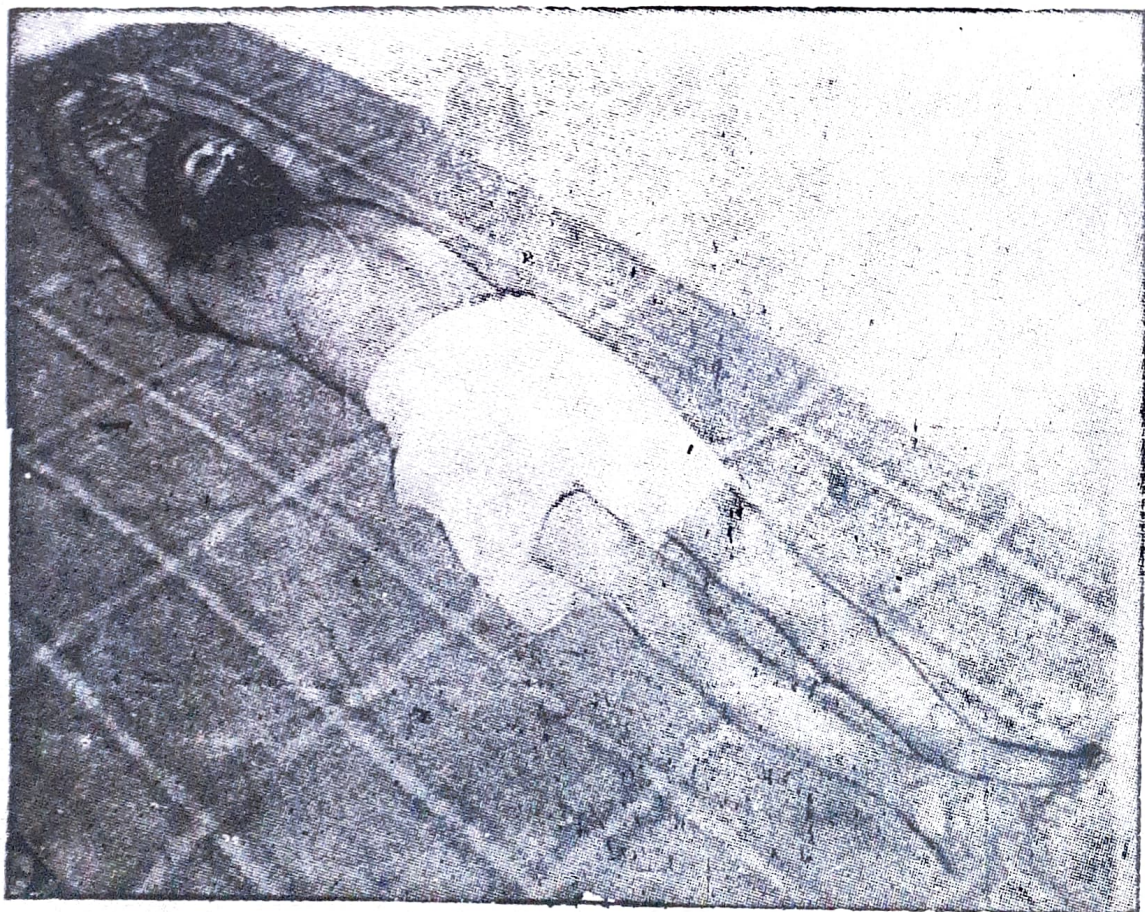
सर्वांत्तान दूसरा रूप

और फिर शिथिल किया जाय। इससे बड़ी शान्ति व आराम मिलता है।

एक बार मेरे कालेज में एक योगिराज आये। वे विदेशों में यौगिक क्रियाओं का प्रचार करते हुए भ्रमण कर रहे थे। उनसे लाखों व्यक्तियों ने योग व ध्यान की प्रक्रिया सीखी थी। मैंने उनसे पूछा कि विदेशों में आपके योग साधन की ओर लोग क्यों इतना आकृष्ट हो रहे हैं। क्या उनमें हिन्दू धर्म के प्रति रुचि उत्पन्न हो रही है? योगिराज मुस्कराये और बोले कि विदेशों में हिन्दू धर्म की तरफ किसी की रुचि नहीं हैं। वहाँ के मनुष्यों का जीवन यन्त्रवत् हो गया है और उनको शान्ति का अनुभव नहीं होता है। बिना नींद की गोली खाये उन्हें नींद नहीं आती है। आज विदेशों में नींद की गोलियाँ बनाने वाले कारखानों की वृद्धि होती जा रही है। हमारे योग साधन व ध्यान प्रक्रिया से उन्हें नींद आ जाती है इसी से वे हमारी ओर आकृष्ट हो रहे हैं।

आज के वैज्ञानिक युग ने मनुष्य के जीवन को इतना जटिल बना दिया है कि उसे कभी शान्ति नहीं मिलती। सदैव भय, चिन्ता व तनाव युक्त जीवन जीने से हृदय रोग व नये-नये रोग उत्पन्न हो रहे हैं। यदि मनुष्य शिथिलीकरण की क्रिया को जान जाय तो उसकी अनेक समस्यायें दूर हो जायें और उसे सुखी व तनाव रहित जीवन जीने की कला मालूम हो जाय। शिथिलीकरण से शरीर व मस्तिष्क दोनों को आराम व स्फूर्ति मिलती है। सर्वोत्तान शिथिलीकरण करने का सर्वोत्तम विधान है।

विधि

पीठ के बल चित्त लेट जाओ। यह ध्यान रखना चाहिए कि

जीवन तत्त्व साधन की क्रियायें करने के लिए किसी तख्ते या जमीन पर दरी, कम्बल या कालीन बिछा कर अभ्यास करना चाहिए। यदि आसन कड़ा होगा तो कष्ट मालूम होगा। किन्हीं-किन्हीं विद्वान का मत है कि यौगिक क्रियाओं के करने के लिए आसन कम से कम दो इंच मोटा होना चाहिए।

अतः आराम देय आसन पर लेट जाओ, हाथों को बगल में डाल दो और सारे शरीर को ढीला छोड़ दो। अब दोनों हाथों की अँगुलियों को आपस में डाल कर और उल्टा करके प्रथम नाभि के पास रखना चाहिए। अब धीरे-धीरे श्वास लेते हुए फेफड़ों को वायु से भर दो। श्वास इस तरह लेनी चाहिए कि फेफड़े नीचे से ऊपर तक वायु से भर जावें और छाती ऊपर उठ जावे। इसके बाद ही सारे शरीर को तानो। हाथ पैरों तथा शरीर के सभी अंगों को जितना तान सको उतना तानो। फिर श्वास भरे हुए और शरीर को ताने हुए दोनों हाथों को सिर के पीछे ले जाओ। श्वास भरना, शरीर को तानना व हाथों को पीछे ले जाना यह तोन क्रियायें कहने में अलग-अलग जान पड़ती हैं। किन्तु करने में साथ ही की जाती हैं। हाथ पीछे ले जाने के बाद तुरन्त ही शरीर को धीरे-धीरे ढीला छोड़ते जाना चाहिए और श्वास को धीरे-धीरे निकालते हुए हाथों को सिर के पास से लाते हुए नाभि तक ले जाना चाहिए। और फिर बगल में डाल देना चाहिए और शरीर को शिथिल कर देना चाहिए। कुछ सेकिण्ड के बाद यही क्रिया पुनः दुहरानी चाहिए अर्थात् दोनों हाथों की अंगुलियों को आपस में डालकर और उल्टा करके श्वास भरते हुए व शरीर को तानते हुए हाथों को पीछे ले जाना चाहिए और फिर श्वास निकालते हुए व शरीर शिथिल करते हुए हाथों को नीचे लाना चाहिए।

यह क्रिया केवल तीन बार करनी चाहिए। एक बार की क्रिया करने में अनुमानतः २० से ४० सेकिण्ड तक लगते हैं। इस क्रिया में जितना ही शरीर में तनाव दिया जावे उतना ही बाद को शरीर ढीला कर दिया जावे। सर्वोत्त न में तनाव व शिथिलीकरण यही दो प्रधान क्रियायें हैं। इस क्रिया को तीन बार करने के बाद एक मिनट तक हाथों को बगल में डाल कर और शरीर को ढीला करके बिल्कुल शान्त होकर पड़े रहना चाहिए उसके बाद जीवन तत्त्व साधन की दूसरी क्रिया करनी चाहिए।

सर्वोत्तान करने में प्रधानतः दो शारीरिक क्रियायें होती हैं। प्रथम श्वास को भरना, रोकना व निकालना और दूसरे शरीर को तानना व ढीला करना। इन क्रियाओं से हृदय, फेफड़े, नस, नाड़ियों पर विशेष प्रभाव पड़ता है। इन अंगों पर पड़ने वाले प्रभाव एवं लाभ को समझने के लिए शरीर रचना पर ध्यान देना चाहिए। जब हम हृदय व फेफड़े की बनावट व क्रिया कलाप को समझ लेंगे तो हमें स्पष्ट मालूम होने लगेगा कि सर्वोत्तान को विधिवत् करने में कितना लाभ होता है।

प्रथम :—

फेफड़े

यही श्वास प्रश्वास की मुख्य इन्द्रियाँ हैं। ये कोमल छेद भरे और फैलने सिकुड़ने वाले होते हैं। इनका आकार एक मन्दिर के गुम्बद की तरह होता है, जिसका नोकदार सिरा गर्दन की ओर होता है और उनकी तली वक्ष गह्वर में होती है। फेफड़े दो होते हैं। ये वक्ष गह्वर में हृत्पिण्ड के दोनों ओर रहते है। इनका रंग कुछ कालापन लिए हुए लाल होता है। इनकी बनावट स्पंज की तरह छिद्रित होती

है। कोमल व हल्के होते हैं। दाहिने फेफड़े में तीन और बायें फेफड़े में दो खण्ड (Lobes) होते हैं। प्रत्येक खण्ड में और भी कितने ही छोटे-छोटे उपखण्डों में बँटा है। ये दोनों खण्ड झिल्ली से अलग रहते हैं। दोनों फेफड़े मिलकर वक्ष का करीब तीन चौथाई भाग से भी अधिक घेर लेते हैं। दोनों फेफड़ों में अनुमानतः सात करोड़ बीस लाख वायु कोष (Air Cells) होते हैं। यदि फेफड़े के कोषों को लम्बाई-चौड़ाई में फैला दिया जावे तो उसका विस्तार चौदह हजार वर्ग फीट में हो जायेगा। इन्हीं के अन्दर धमनी, शिरा और केशिका नाड़ियाँ भरी रहती हैं। इन्हीं वायु कोषों में हवा भरती है। ये कोष एक माँस पेशी की चाल से खुलते और बन्द होते रहते हैं। जब ये कोष खुलते हैं तब एक ओर से तो हृदय से अशुद्ध रक्त और दूसरी ओर से श्वास द्वारा लिया हुआ शुद्ध वायु दोनों मिलकर इसे भर देते हैं। इन वायु कोषों से मिली हुई असंख्य छोटी नलिकायें हैं। इनके और कोषों के बीच में महीन झिल्लीदार त्वचा का परदा रहता है। प्रकृति का एक विलक्षण नियम यह है कि जिसमें जो वस्तु नहीं होती वह उसी को दूसरे से अपनी ओर खींचती है। रक्त में तो शुद्ध वायु (Oxygen) नहीं है और श्वास के द्वारा लिए हुये वायु में (Carbonic Acid Gas) नहीं है। इन दोनों में जब उपर्युक्त नियम काम करता है तो रक्त में से कार्बन वायु निकलकर श्वास के साथ और श्वास के द्वारा आये हुए वायु में से आक्सीजन वायु निकलकर रक्त में चला जाता है। श्वास के साथ जो वायु जाती है उसमें ७९% नाइट्रोजन तथा २१% आक्सीजन और ४% कार्बन और कुछ जल तत्व जाता है परन्तु प्रश्वास में ५% आक्सीजन कम हो जाता है और ५% कार्बन बढ़ जाता है। इसका फल यह होता है कि रक्त शुद्ध हो जाता है और वायु अशुद्ध। शुद्ध रक्त तो हृदय में जाकर धमनियों के द्वारा

समस्त शरीर में चला जाता है और अशुद्ध वायु प्रश्वास द्वारा बाहर निकल जाता है। यह कार्य हर समय हुआ करता है।

फेफड़े के अन्दर २०० घन इंच वायु रहती है जिसको (Stationary air) कहते हैं। इसके अतिरिक्त ३० घन इंच वायु बराबर श्वास-प्रश्वास के द्वारा आया जाया करती है जिसको (Tidal air) कहते हैं। यदि हम दीर्घ प्रश्वास करके रेचक करें तो उस २०० घन इंच (Stationary air) में से १०० घन इंच वायुऔर बाहर निकल जाती है। उस बाहर निकल जाने वाली वायु को (Supplemental air) कहते हैं और जो वायु १०० घन इंचफेफड़े में रह जाती है वह (Residual air) है। इस वायु को कोई नहीं निकाल सकता। यदि यह वायु भी निकल जावे तो मनुष्य की मृत्यु होजावे। इसके अतिरिक्त यदि हम दीर्घ श्वास लेकर पूरक करें तो १००घन इंच(Complementary air) और भर सकते हैं। इस प्रकार कुल ३३० घन इंच वायु भरने पर फेफड़े पूर्णतया फैल जाते हैं। किन्तु मामूली श्वास प्रश्वास में अर्थात् केवल ३० घन इंच (Tidal air) लेने में फेफड़ों का कुल भाग नहीं खुलता और दो करोड़ वायु कोषों में वायु पहुँचती है और शेष ५॥ करोड़ वायु कोष उसी प्रकार रह जाते हैं। परिणाम यह होता हैकि इन ५॥ करोड़ वायु कोषों में आया हुआ रक्त शुद्ध नहीं होता ओर अशुद्ध रक्त ही सारे शरीर मे वापस चला जाता है और अनेक रोगों को उत्पन्न करता है।

हृदय

यह शरीर का बहुत महत्व पूर्ण अंग है। यह शरीर के अन्दर रक्त का प्रधान केन्द्र है। इस शरीर में दो प्रकार को नाड़ियाँ हैं एक तो वे जो हृदय से सारे शरीर को जाती हैं और दूसरी वे जो शरीर से हृदय में आती हैं, पहली नाड़ियाँ धमनी और दूसरी शिरा

कहलाती हैं। धमनियाँ हृदय से शुद्ध रक्त को समस्त शरीर में ले जाती हैं, और शिराओं का काम यह है कि समस्त शरीर से अशुद्ध रक्त को शुद्ध होने के लिये हृदय में लाया करें।

हृदय के दो भाग हैं। एक दाहिना और एक बायाँ। जो रक्त फेफड़ों से शुद्ध होकर जाता है, वह हृदय के बायें भाग में जमा होता है और जो अशुद्ध रक्त सारे शरीर से बहकर आता है वह दाहिने भाग में जमा होता है। इन प्रत्येक दाहिने-बायें भागों में दो-दो कोष्ठ हैं। इस प्रकार हृदय में कुल चार कोष्ठ हैं। एक-एक ऊपर और एक-एक नीचे। ऊपर वाले को **(Left auricle)** बायाँ ग्राहक कोष्ठ और **(Right auricle)** दाहिना ग्राहक कोष्ठ कहते हैं और नीचे वाले को **(Left ventricle)** बायाँ क्षेपक कोष्ठ और **(Right ventricle)** दाहिना क्षेपक कोष्ठ कहते हैं। इन दोनों भागों के बीच में एक छेद होता है। उसमें परदे लगे रहते हैं। और इन पर्दों में छोटे-छोटे बन्धन लगे रहते हैं। जिनके संयोग से परदे खुलते और बन्द होते हैं। हृदय के चारों-कोष्ठों से रक्त नालियों का सम्बन्ध रहता है। दाहिने ग्राहक कोष्ठ से शरीर के ऊपर व नीचे की दो बड़ी शिरायें मिलती हैं और दाहिने क्षेपक कोष्ठ से एक वड़ी धमनी निकलती है जिसके दो भाग होकर दोनों फेफड़ों में जा मिलते हैं।

फेफड़े से भी शिरायें निकलती हैं जो बायें ग्राहक कोष्ठ में जाती हैं। इसी प्रकार बायें क्षेपक कोष्ठ से एक वड़ी धमनी निकलती है जिसकी शाखायें सारे शरीर में फैली हुई हैं। प्रत्येक धमनी के मुँह पर अर्द्ध चन्द्राकार परदे रहते हैं जो धमनी की ओर खुलते हैं और क्षेपक कोष्ठ की ओर बन्द होते हैं। हम यह बता चुके हैं कि हृदय के दो भागों में से दाहिने में अशुद्ध रक्त और बायें में शुद्ध रक्त रहता

है। शुद्ध लाल रक्त सारे शरीर में जाकर शरीर का विकार अपने साथ लेकर कुछ काला हो जाता है फिर वह हृदय के दाहिने ग्राहक कोष्ठ में जाता है और वहाँ से उतर कर दाहिने क्षेपक कोष्ठ में पहुँचता है। इन दोनों कोष्ठों के बीच का परदा ज्यों ही बन्द हुआ त्यों ही हृदय आकुंचित होता है और रक्त जोर से फेफड़ों में प्रविष्ट होता है। इधर फेफड़ों में आई हुई प्राण वायु उस काले रंग के विकार को रक्त से चूस कर प्रश्वास द्वारा बाहर फेंक देती है और रक्त शुद्ध लाल हो जाता है। इस प्रकार फेफड़ों में रक्त शुद्ध हो जाने के बाद वह हृदय के बायें ग्राहक कोष्ठ में आता है। फिर हृदय संकुचित होता है और रक्त जोर से धमनियो में प्रविष्ट होकर सारे शरीर में दौड़ता है। यह क्रिया प्रति क्षण हुआ करती है और जब दाहिने व बायें क्षेपक कोष्ठ संकुचित होते हैं तब लुप डुप की आवाज होती है। अनुमानतः २४ घण्टे में २५२ मन रक्त हृदय से फेफड़े में शुद्ध होने के लिये आता है। यह न भूलना चाहिए कि ये शिरायें व धमनियाँ जहाँ जहाँ एक दूसरे से मिलती है वहाँ वहाँ एक प्रकार के परदे (Gate keeper) लगे है जो शरीर में शुद्ध व अशुद्ध रक्त का मिश्रण नहीं होने देते।

अब यह जानने की जरूरत है कि ये सात करोड़ बीस लाख वायु कोष क्या हैं ? ये धोबियों के कुंड या टब हैं। जैसे धोबी अपने कुंडियों में पानी डाल कर वस्त्र धोते हैं उसी तरह रक्त इन वायु कोषों में भर कर श्वास द्वारा ली हुई प्राण वायु से शुद्ध होता है ऐसा अद्‌भुत धोबी खाना संसार में और कहीं नहीं मिलेगा। आक्सीजन एक प्रकार की भाप है। आप खुली हवा में जोर से श्वास लीजिए तो नाक के भीतर की त्वचा में एक प्रकार की मीठी जलन मालूम होगी इसी आक्सीजन की तेजी से फेफड़े के उन वायु कोषों के अन्दर भरे हुए रक्त का मैल जल जाता है। महर्षि मनु अपनी स्मृति में प्राणायाम

का लाभ बताते हैं कि :—

दह्यन्ते ध्यायमानानां, धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते, दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥

अर्थ—जैसे अग्नि में धौंके हुए धातुओं के मल दग्ध हो जाते हैं। इसी प्रकार प्राण के रोकने से इन्द्रियों के दोष दग्ध हो जाते हैं।

अब विचारणीय बात यह है कि हृदय से रक्त शुद्ध होने के लिये फेफड़े में जावे परन्तु श्वास के साथ वायु फेफड़े में न पहुँचे अथवा सब वायु कोषों में जहां रक्त पहुँचा है शुद्ध वायु न पहुँचे तो उसका परिणाम क्या होगा। साधारण रीति से जो श्वास लिया जाता है, वह पूर्ण श्वास नहीं होता, इसलिए फेफड़े के सब भाग नहीं खुलते अर्थात् केवल दो करोड़ वायु कोषों में वायु पहुँचती है और शेष ५।। करोड़ कोषों में वायु नहीं पहुँचती। परिणाम यह होता है कि फेफड़े के वे भाग रोगी होने लगते हैं और खाँसी, दमा क्षय, निमोनियाँ आदि अनेक रोग जो फेफड़ों से सम्बन्धित हैं होने लगते हैं दूसरी ओर एक भयंकर परिणाम यह भी होता है कि हृदय से जो रक्त शुद्ध होने के लिए फेफड़े में आता है वहाँ बिना शुद्ध हुए अशुद्ध ही हृदय में वापस चला जाता है। हृदय भी उसे रोक नहीं सकता वहाँ से वह धमनियों के द्वारा समस्त शरीर में पहुँचता है इसका फल रक्त विकार होता है। रक्त के विकृत होने से मामूली रोग खाज से लेकर भयंकर कुष्ठ रोग तक हो जाता है।

इस लिए इन दुष्परिणामों से बचने के लिए भी आवश्यक है कि फेफड़े वायु से पूरित होते रहें और कोई कोष ऐसा न रहने पावे जहाँ वायु न पहुँच सके। यहीं से दीर्घ श्वास प्रश्वास की व प्राणायाम की आवश्यकता आरम्भ होती है।

सर्वोत्तान करते समय जब हम श्वास भरते हैं और शरीर को तानते हुए हाथ पीछे ले जाते हैं तो फेफड़ों के सारे वायु कोषों में शुद्ध वायु पहुँच जाती है और हृदय से आया हुआ सम्पूर्ण रक्त शुद्ध होकर वापस जाता है और इस तरह न तो हमारे फेफड़ों में कोई रोग होता है और न दूषित रक्त के कारण शरीर के किसी अन्य भाग में कोई रोग होता है। रक्त में आक्सीजन की मात्रा बढ़ जाने से बल, स्फूर्ति व नवजीवन का संचार हो जाता है और यदि कोई रोग छिपे बैठे होते हैं तो वे भाग जाते हैं।

सर्वोत्तान में दूसरी क्रिया तानने व शिथिलीकरण की होती है। इससे रक्त नलिकाओं में जमी हुई मैल बाहर निकल जाती है। जैसे किसी रबड़ की नली कोसाफ करने के लिए उसे दबाकर खींचते हैं और ढीला करते हैं, उसी तरह शरीर को तानने व ढीला करने से नलिकाओं में जमी हुई मैल छूट कर रक्त के साथ बाहर जाती है और शरीर के अंग जो मैल को बाहर निकालते हैं उन्हीं के द्वारा वह मैल भी बाहर चली जाती है और शरीर शुद्ध होकर रोग रहित व कान्ति मय बन जाता है।

यह है सर्वोत्तान करने का अनुपम लाभ। अब हम जीवन तत्त्व साधन की दूसरी क्रिया का वर्णन करेंगे।

स्कन्ध चालन

यह जीवन तत्त्व साधन की दूसरी क्रिया है। इस को करने के लिए मनुष्य को सुखासन से बैठ जाना चाहिए और सिर को सीधा रखते हुये दोनों कन्धों को साइकिल के पैडल की तरह चलाना चाहिए। उसका ठीक प्रकार यह है। अपने दाहिने कन्धे को नीचे की ओर झुका दीजिए, जितना भी दबाया जा सके। ऐसा करने पर बायाँ कन्धा स्वाभाविक ही ऊपर उठ जायेगा। फिर दाहिने कन्धे को झुके हुए आगे ले जाकर ऊपर ले जाओ। ऊपर की ओर ले जा करके उसको पीछे को ले जाओ। ज्यों-ज्यों दाहिने कन्धे को नीचे की ओर ले जाओगे, त्यों-त्यों बायाँ कन्धा ऊपर की ओर हो जायेगा और ज्यों-ज्यों दायाँ कन्धा आगे की ओर झुकाओगे त्यों-त्यों बायाँ कन्धा पीछे को ओर जायेगा और ज्यों ही दायाँ कन्धा ऊपर की ओर जायेगा त्यों ही बायाँ नीचे की ओर हो जायेगा और दायाँ कन्धा ऊपर की ओर होकर के पीछे की ओर हो जायेगा। इस क्रिया को करने पर दोनों कन्धे साइकिल के पैडल की तरह गोलाकार रूप में घूमते रहेंगे। सिर सीधा रखकर सामने की ओर देखते रहना चाहिए। इस क्रिया को पन्द्रह मिनट तक करनी चाहिए।

इस क्रिया को विपरीत गति से भी किया जा सकता है। यदि हम पीछे की ओर से आगे की ओर चलाना चाहते हैं तो अपने दाहिने कन्धे को कान तक ऊपर उठाना चाहिये और बायाँ कन्धा नीचे की ओर ले जाना चाहिए। आगे की ओर झुके बायें कन्धे को गोलाकार घुमाते हुए नीचे की ओर ले जाना चाहिए। दाहिने कन्धे को नीचे की ओर झुकाने से बायाँ कन्धा स्वयं ही पीछे की ओर घूमता हुआ ऊपर की ओर चला जायेगा। इसी प्रकार दोनों कन्धे बेलनाकार घूमते रहेंगे। इस क्रिया को करने से फेफड़े सक्रिय हो जाते हैं और उसके सुसुप्त वायु कोष खुल जाते हैं और

अपना कार्य सुचारु रूप से करने लगते हैं। कन्धों हंसली एवं गर्दन के सभी विकार दूर हो जाते हैं। इस क्रिया का प्रभाव यकृत व प्लीहा पर भी पड़ता है। यकृत को जिगर व अँग्रेजी में लिवर (Liver) कहते है। जिगर की खराबी वर्तमान युग की सभ्यता का सबसे बड़ा प्रसाद है। हमारे कुपथ्यों, दुष्कर्मों से अनियमित जीवन जोने से तथा व्यायामादि न करने से यकृत बिगड़ जाता है और बढ़ जाता है। अँग्रेजी में कहावत हैकि Life, love and liver are inseparably tied together, अर्थात् जीवन प्रेम और जिगर इस प्रकार परस्पर बंधे हुए हैं कि वे अलग नहीं किये जा सकते। जिसका जिगर, खराब, उसकी जिन्दगी बरबाद,जिसकीजिन्दगी बरबाद, उसके लिए प्रेम वैसे ही है जैसे भैंस के लिए बीन व बन्दर के लिए अदरख।

यकृत में एक ऐसारस रहता है जो हर प्रकार के विष को बेकार कर देता है। यकृत से एक पाचक रस निकलता है जो भोजन को पचाने में सहायता करता है। जब यह रस भोजन में नहीं मिलता तो पेट में अफारा और भारीपन हो जाता है और पीड़ा होने लगती है। खून नहीं बनता और पीलिया रोग हो जाता है। यकृत आकार में बढ़ जाता है। छाती की जलन, मुँह का कडुवापन, खट्टी डकार कड़वा कै व हरे पीले दस्त आदि रोग जिगर की खराबी से होते हैं। स्कन्ध चालन क्रिया करने से यकृत में खराबी नहीं आती है और यदि कोई दोष आ भी गया है तो वह दूर हो जाता है और जिगर अपना कार्य सुचारु रूप से करने लगता है।

स्कन्ध चालन क्रिया का विशेष प्रभाव Thyroid व Para Thyroid glands पर पड़ता है। यह gland क्या है और हमारे शरीर को स्वस्थ रखने में इनका क्या महत्व है। इस पर हम विस्तार से विचार करेंगे।

Thyroid glands—यह ग्रन्थि मनुष्य की ग्रीवा के कुछ नीचे श्वास नली के दोनों ओर स्थित होती है। इसके दो पिण्डक होते हैं जो ऊपर की ओर फैले रहते हैं, नीचे की ओर जुड़े रहते हैं। ग्रन्थि का प्रत्येक पिण्ड लगभग पाँच सेन्टीमीटर लम्बा व तीन सेन्टीमीटर चौड़ा रहता है। इसका ऊपरी भाग नुकीला और नीचे का भाग चौड़ा होता है। इस ग्रन्थि का रंग भूरा होता है। ग्रन्थि में पीले रंग का हारमोन बनता है, जिसे Thyroxin कहते हैं। थाइरोक्सिन का प्रमुख भाग आयोडीन होता है। भोजन में आयोडीन की कमी से यह ग्रन्थि फूलने लगती है और मनुष्य को घेंघा रोग हो जाता है।

इन ग्रन्थि में रक्त के श्वेत कीटाणुओं की प्रमुख छावनी रहती अर्थात् यह उनका सबसे बड़ा सुदृढ़ किला है। यह ग्रन्थि जब तक सशक्त रहती है और अपना कार्य ठीक प्रकार करती रहती है तब तक मनुष्य के ऊपर रोगों का आक्रमण नहीं होता है और वृद्धावस्था जल्दी नहीं आती है। जब यह ग्रन्थि ठीक कार्य नहीं करती तब शरीर में रोग के कीटाणु अपना प्रभाव जमाने लगते हैं और मनुष्य स्वस्थ नहीं रह पाता।

Para Thyroid glands—इस ग्रन्थि की संख्या चार होती है। दो ग्रीवा में थाइरोयड ग्रन्थि के ठीक पीछे स्थित रहती है। इन ग्रन्थियों का आकार छोटा लगभग ६ सेन्टीमीटर और रंग भूरा लाल होता है। दो ग्रन्थियाँ ऊपर व दो ग्रन्थियाँ नीचे स्थित रहती हैं। पैरा थाइरोयड ग्रन्थि से Para Thrin नामक हारमोन निकलता है। इस हारमोन का कार्य रक्त से कैलशियम और फास्फोरस की मात्रा पर नियन्त्रण रखना है। इस हारमोन की कमी से बच्चों की हड्डियाँ कमजोर व लचीली हो जाती हैं। जब इस ग्रन्थि की क्रियाशीलता कम हो जाती है तब मनुष्य के हाथ पैरों में ऐठन होने लगती है।

स्कंध चालन बायें कंधे से

स्कंध चालन दायें कंधे से

थोरायड ग्रन्थि के कार्य के महत्व को समझने के लिए हम एक काल्पनिक उदाहरण का आश्रय लेंगे। हमारे शरीर के रक्त में दो प्रकार के कीटाणु पाये जाते हैं। एक लाल रक्त कीटाणु तथा एक श्वेत रक्त कीटाणु। इनका आकार इतना छोटा होता है कि साधारण आँखों से नहीं देखा जा सकता। खुर्दबीन से देखने पर पता लगता है कि एक लाल रक्त कीटाणु का व्यास लगभग १/३२०० इंच तथा मोटाई लगभग १/१२००० इंच होती है। यदि एक करोड़ लाल कीटाणु एक स्थान पर सटाकर रखे जावें तो वे केवल एक वर्ग इंच जगह घेरेंगे। श्वेत रक्त कीटाणु आकार में कुछ बड़े होते हैं। इनका व्यास १/२५०० इंच होता है। अनुमानतः हर पाँच सौ लाल कीटाणुओं पर एक श्वेत कीटाणु होता है।

श्वेत कीटाणु सैनिक हैं और लाल कीटाणु नागरिक हैं। जब कोई रोग कीटाणु शरीर में घुसता है तो श्वेत कीटाणु उसे मार डालते हैं किन्तु यदि रोग कीटाणु बलवान हुए और श्वेत कीटाणु दुर्बल हुए तो रोग कीटाणु मारते-काटते आगे बढ़ने लगते हैं। परमात्मा ने हमारे शरीर की रचना बड़ी विचित्र की है और रोगों की रोकथाम के लिए अनेक संस्थान बना रखे हैं। जहाँ-जहाँ शरीर में जोड़ हैं वहाँ-वहाँ श्वेत कीटाणु रूपी सैनिकों की छावनियाँ बनी हैं और वहाँ श्वेत कीटाणुओं की एक सेना मौजूद रहती है। सबसे बड़ी छावनी व सुदृढ़ किला थोरायड ग्रन्थि में हैं जहाँ अरबों-खरबों की संख्या में सेना मौजूद रहती है।

[illegible]ग कीटाणुओं की एक विशेपता यह है कि जब वे शरीर के किसी ए[illegible] भाग से प्रवेश करते हैं, तो एक से दो, दो से चार और चार से आठ [illegible]दि क्रम से अपनी संख्या बढ़ाने लगते हैं और श्वेत कीटाणुओं से यु[illegible] करते हुए रक्त - नलिकाओं द्वारा हृदय की ओर बढ़ने

लगते हैं। शरीर के जोड़ों पर जहाँ सैनिकों की छावनी है वहाँ जमकर लड़ाई होती है। बहुधा यहीं पर रोग—कीटाणु हार खा जाते हैं। और आगे नहीं बढ़ पाते किन्तु यदि रोग कीटाणु सशक्त हुए और हमारे सैनिक कमजोर पड़ गये तो वे इन छोटे किलों पर भी विजय प्राप्त कर लेते हैं और आगे बढ़ चलते हैं। सबसे बड़ी सेना थोरायड ग्रन्थि में रहती है, यहाँ सैनिकों की संख्या भी अधिक होती है और शरीर के अन्य भाग से भी श्वेत कीटाणु सैनिक भाग कर यहाँ सहायता देने पहुँच जाते हैं। यहाँ पर बड़ी भयंकर लड़ाई होती है और उस युद्ध से इतनी ऊष्मा पैदा होती है कि सारा शरीर गर्म हो जाता है। और लोग कहने लगते हैं कि बुखार आ गया। इस किले पर विजय प्राप्त करना साधारण रोग कीटाणुओं के बस की बात नहीं है। यहाँ के युद्ध में रोग कीटाणु व श्वेत कीटाणु भारी संख्या में मारे जाते हैं और उनकी लाशें मवाद बलगम व दस्त आदि विजातीय द्रव्यों के रूप में शरीर से बाहर निकल जाते हैं। जब शरीर में कोई रोग हो जाता है तो मनुष्य ओषधि का सहारा लेता है। ओषधियां श्वेत कीटाणुओं की संख्या को बढ़ाती हैं और उनको बलबान बनाती हैं ताकि वे रोग कीटाणुओं से युद्ध में विजय प्राप्त कर सकें।

यदि कोई रोग कीटाणु इतना बलवान व शक्तिमान हुआ कि वह थोरायड ग्रन्थि के किले को भी विजय कर ले तो वह आगे बढ़कर सीधे हृदय पर आक्रमण कर देता है और मनुष्य की जीवन लीला समाप्त कर देता है। थोरायड ग्रन्थि के आगे कोई ऐसा किला भी नहीं है जहाँ रोग कीटाणुओं को रोका जा सके। कहते हैं कि हैजे के कीटाणु इतने शक्तिवान होते हैं कि शरीर में घुसने के साथ ही मिनटों में लाखों करोड़ों की संख्या में बढ़ने लगते हैं और शरीर के लाल व श्वेत कीटाणुओं को मारते हुए और बीच की छावनियों को विजय

करते हुए एक घण्टे में थोरायड ग्रन्थि पर पहुँच जाते हैं। शरीर में लाशें ही लाशें हो जाती हैं और कै दस्त के रूप में बाहर निकलने लगती हैं। मनुष्य की शक्ति क्षीण होने लगती है। थोरायड ग्रन्थि के सैनिक थोड़ा मुकाबला करते हैं मगर उस समय तक हैजे के कीटाणुओं की संख्या महाशंखों में पहुँच जाती है। वे इस बड़े किले को भी विजय करते हुए हृदय पर पहुँच जाते हैं और मनुष्य एक घण्टे में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

उपर्युक्त वर्णन से मालूम होता है कि हमारे शरीर के थोरायड ग्रन्थि का कितना बड़ा महत्व है। रोग के कीटाणुओं का आक्रमण निरन्तर हुआ करता है किन्तु हमारे शरीर के सैनिक उनको मार काट कर खा जाते हैं। यदि हमारी थोरायड ग्रन्थियाँ मजबूत हैं तो किसी रोगाणु में इतना साहस नहीं है कि वह इस पर विजय प्राप्त कर सके। अतः रोगों से बचने के लिए यह आवश्यक है कि हम अपने थोरायड ग्रन्थियों को बलवान व शक्तिमान बनाए रक्खें। स्कन्ध चालन से यह ग्रन्थि सशक्त बनी रहती है और उसमें रहने वाले सैनिक कभी युद्ध में परास्त नहीं होते।

सर्वाङ्ग आसन करने से भी थोरायड ग्रन्थियों को विशेष रक्त की मात्रा मिलने लगती है और वे बलवान बने रहते हैं। यदि, जीवन तत्त्व साधन की क्रियाओं को करने के बाद थोड़ा आराम करके सर्वाङ्ग आसन व मत्स्यासन कर लिया जावे तो थोरायड ग्रन्थियाँ बहुत मजबूत हो जाती हैं और उनकी क्रियाशीलता बराबर बनी रहती है तब तक मनुष्य नीरोग बना रहेगा और वृद्धावस्था नहीं आवेगी सर्वांगासन वमत्स्यासन करने की विधि किसी से सीखी जा सकती है

पग चालन

जीवन तत्त्व साधन की तीसरी क्रिया का नाम पग चालन है। इसको करने के लिए सीधे चित लेट जाना चाहिए। दोनों हाथ बगल में पड़े रहें। अब अपने एक पैर को दूसरे पैर के उपर रख करके साधारण गति से हिलाना चाहिए। हिलाने का क्रम यह होगा कि पहले हम अपने दायें पैर को बायें पैर के टखने पर रखें और दायें पैर की एड़ी को जमीन से लगायें फिर बायें पैर के अंगूठे को जमीन में लगावें। दायीं एड़ी जमीन से लगातें सयम बायां अँगूठा उठ जायेगा और बायाँ अँगूठा जमीन पर लगाते समय दायीं एड़ी ऊपर उठ जावेगी। इसी तरह एक बार एड़ी जमीन से मिलावें, फिर अंगूठा इसी तरह हिलाते रहें और कम से कम चार मिनट तक इस क्रिया को करें। इसके बाद पाँव बदल लें अर्थात् बांयें पैर को दाहिने पैर के टखने पर रखना चाहिए और बायें पैर की एड़ी और दायें पैर के अंगूठे को बारी बारी से जमीन में मिलाते रहना चाहिए। इसको भी क्रम से कम चार मिनट तक करना चाहिए। अर्थात् पग चालन क्रिया को आठ मिनट तक करने का विधान है। इस क्रिया को आवश्यकता-नुसार और अधिक समय तक किया जा सकता है।

यह क्रिया बहुत साधारण है और करने में सरल भी है किन्तु इसका लाभ बहुत है। इस क्रिया में कमर के नीचे के हिस्से शान्त पड़े रहते हैं। इस क्रिया से पाँव की नसें यथार्थ रूप से काम करने लगती हैं। जिन लोगों को कटि स्नायु बात या गृध्रसी [Sciatica] का रोग हो उन्हें इस क्रिया से पूरा लाभ हो जाता है। पग चालन क्रिया का विशेष प्रभाव छोटी बड़ी आँतों पर तथा मूत्र वाहक संस्थान पर पड़ता है अतः इनकी बनावट व क्रिया के बारे में जान लेना आवश्यक है।
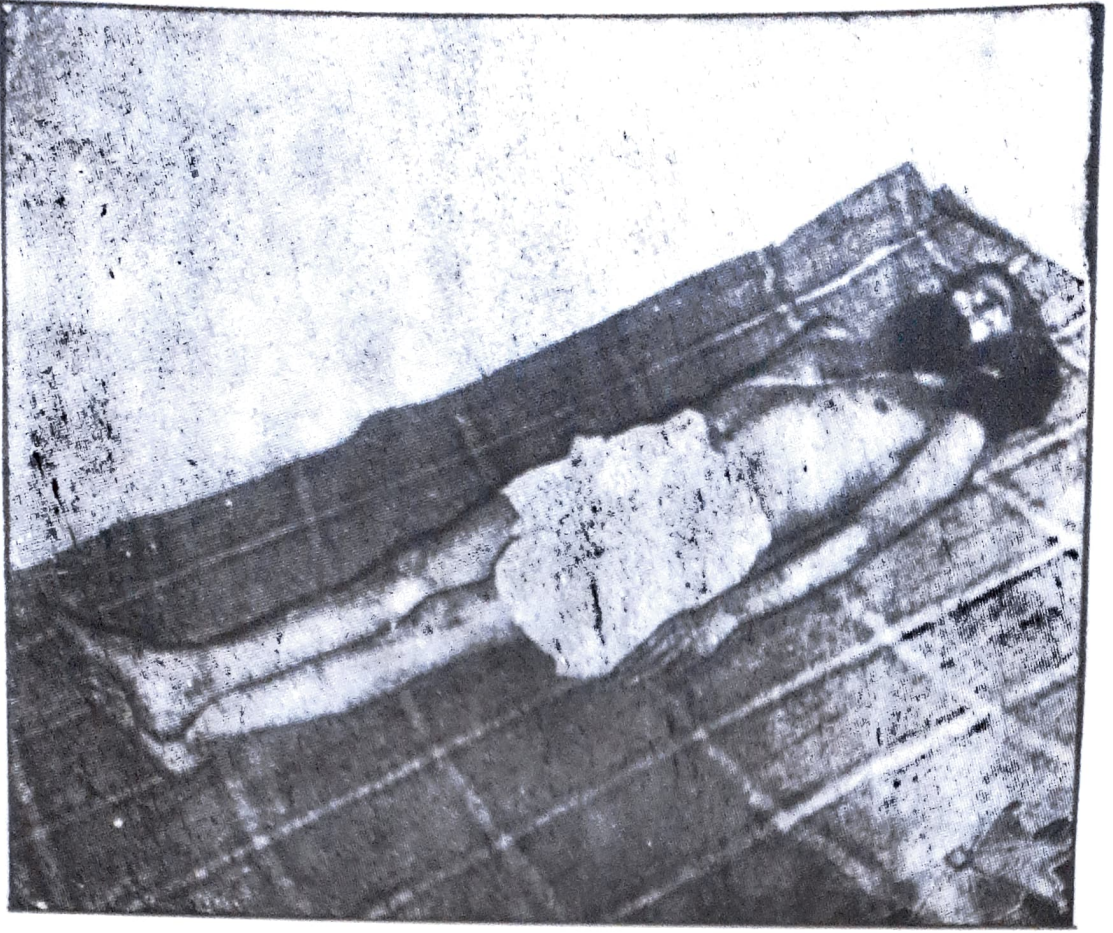
पगचालन

पगचालन

पोषण संस्थान (Digestive System)

इसके अन्तर्गत मुँह, गल कक्ष, पाकाशय छोटी व बड़ी आतें स्थूलांत्र का अन्तिम वक्रांश, मलांत्र, क्लोम ग्रन्थि आदि आते हैं। यहाँ पर हम केवल छोटी व बड़ी आँतों के सम्बन्ध में बतायेंगे। शेष भागों के सम्बन्ध में अन्य क्रियाओं के वर्णन के समय लिखेंगे। आँत या अंतड़ी पाक स्थली के निचले भागों में रहती हैं। ये टेढ़े-मेढ़े नल हैं। इन नलों ने कितनी बार घूमकर उदर गह्वर की बहुत सी जगह घेर रखी है। आंतों के दो भाग होते है। एक छोटी आँत व एक बड़ी आँत।

क्षुद्र अंत्र (Small Intestines) छोटी आँत की लम्बाई करीब २० फीट है। पाकस्थली से गये हुए भुक्त पदार्थ का न पचा हुआ भाग इसी छोटी आँत में प्रवेश करता है। पाचन के समय इस आँत में पित्त कोष से पित्त रस और क्लोम ग्रन्थि से क्लोम रस आकर मिल जाता है। इस आँत से भी एक प्रकार का रस निकलता है। उसे अम्ल रस कहते हैं। पाक स्थली से न पचा हुआ अंश आँतों में आने के बाद इन तीन रसों में ही पिसा करता है।

बृहत अंत्र (Large Intestines) यह उदर के दाहिने निम्न भाग से आरम्भ होती है जिसे कोख कहते हैं और जिससे अंत्रपुट मिले हुए हैं। अधो क्षुद्रांत्र का मुँह अंत्रपुट मे खुलता है और उस स्थान पर एक कपाट रहता है जिसको कालिक वेल्व कहते हैं। बड़ी आँत तीन भागों में विभक्त है। ऊर्ध्वगामी अंत्र भाग (Ascending Colon) यकृत के भीतर से होती हुई ऊपर जाती है। यहाँ से यह टेढ़ी होकर घूमती है। उसे अनुप्रस्त अंत्र भाग (Transverse Colon) कहते हैं। इस तरह ऊपरी तलपेट को पार करती हुई

प्लीहा प्रदेश में घुस जाती है। यहाँ से यह नीचे की ओर झुकती है और इसका नाम पड़ता है अधोगामी अंत्र भाग (Descending Colon) इसका सबसे निचला भाग क्रमशः जघनिया (बृहदंत्र Iliac Colon) और श्रोणिक वृहदंत्र (Pelvic Colon) कहलाता है। यह स्थान जहाँ बड़ी आँत झुकती है वक्र भाग कहलाता है।

भोजन पहले मुँह से पेट में आता है। पेट में पाचन क्रिया शुरू हो जाती है। पेट से भोजन छोटी आँतों में आता है। भोजन का पूरा पाचन छोटी आँत में ही होता है। छोटी आँत ही पचे खाद्य पदार्थ से रस खींच लेती है और यह रस खून के दौरान में भेज दिया जाता है। भोजन का बचा-बचाया अंश जो प्रायः रस निकल जाने के बाद शरीर के किसी काम का नहीं है बड़ी आँत में आ जाता है। अगर कुछ रस बच रहा है तो बड़ी आँत उसे सोख लेती है और तब उस बचे हुए अंश को बाहर निकाल देती है। यही अंश विष्ठा है।

स्वाभाविक नियम है कि जो कुछ भी खाया जावे अपने समय पर पचकर और शरीर को आवश्यक रस देकर मल रूप में शरीर से बाहर हो जावे किन्तु दूषित पदार्थ खाने से, अनियमित जीवन जीने से तथा व्यायाम न करने से भोजन का पूर्ण पाचन नहीं होता और अनपचा भाग बड़ी आँत में जमने लगता है। मल साफ नहीं होता और अनपचा भाग बड़ी आँत में जमने लगता है। मल साफ नहीं होता और कोष्ठबद्धता हो जाती है। अगर बड़ी आँत में यह बेकार पदार्थ अधिक दिन तक ठहरा रहे तो वही सड़ने लगता है और उसके सड़ने के कारण अनेक बिषैले कीटाणु उसमें पैदा हो जाते हैं। बड़ी आँत में बहुत सी छोटी-छोटी गिल्टियाँ हैं जो रस सोखती हैं। यह गिल्टियाँ आँत के अन्दर सड़ते हुए मल से जहरीले पदार्थ सोखकर

खून के दौरान में डाल देती हैं। इससे सारा शरीर जहर से भर जाता है और अनेक प्रकार की बीमारियाँ हो जाती हैं। इसी से कहा जाता है कि संसार में जितने भी रोग हैं वे आँतों की खराबी से होते हैं।

आँतों की सफाई स्वाभाविक रूप में मल निकलने से होती है, लेकिन भोजन को ठीक प्रकार चबाकर न खाने से तथा अखाद्य दूषित पदार्थों के सेवन से अपच अथवा कब्ज हो जाता है। इसको दूर करने के लिए मनुष्य दवाओं का प्रयोग करता है अथवा जुलाब की गोली खाता है। दवा में खुद कोई ताकत नहीं होती जो पेट की सफाई कर सके। वह तो शरीर के लिए विजातीय पदार्थ हो जाता है। शरीर इस विजातीय पदार्थ को अपनी सारी ताकत से बाहर निकालने का यत्न करता है। इसी कोशिश में आँत से चिपका हुआ मल भी बाहर हो जाता है। यह दवायें आँत में उत्तेजना और जलन पैदा करती हैं। बार-बार की जलन व उत्तेजना से आँतें कमजोर हो जाती हैं और अपना मामूली काम नहीं कर सकती। जब आँतों की शक्ति क्षीण हो जाती है तब न कोई दवा काम आती है और न जुलाब की गोली।

आँतों में चिपके हुए मल को निकालने का सिर्फ एक ही उपाय है और वह है गुदा के रास्ते पानी चढ़ाकर बड़ी आँत की नाली को धोना। आजकल डाक्टर लोग एनिमा द्वारा इस प्रकार की सफाई करते हैं। योगी लोग इसी को वस्ति क्रिया द्वारा करते हैं। वस्ति के द्वारा आँतों में जल चढ़ाकर नौली करने पर आँतों के सब विकार मिट जाते हैं और चिपका हुआ मल जल के साथ निकल जाता है। जिनकी आँतें खराब हो गई हों और जिन्हें भयानक कोष्ठबद्धता रहती हो उन्हें किसी योगी से वस्ति व नौली क्रिया सीखकर आँतों

की सफाई कर डालनी चाहिए। इन क्रियाओं से आँतों की शक्ति भी बढ़ जाती है।

पग-चालन की क्रिया से भी आँतों पर प्रभाव पड़ता है। जब बार-बार एड़ी व अँगूठे को जमीन से लगाने के प्रयास में पैर को हिलाया जाता है तो पैर की नसों से लेकर छोटी व बड़ी आँतों तक खिंचाव पैदा हो जाता है। पाँवों के इधर-उधर हिलाने से आँतों पर एक बार तनाव पड़ता है और एक बार वे ढीली पड़ जाती हैं। बार-बार तनाव और ढीलेपन से आंतों की दीवाल पर चिपके मल छूट जाते हैं और वे साधारण मल के द्वारा बाहर निकल जाते हैं। जो इस क्रिया को नित्य नियम से करेंगे उनकी आँतों में कोई विकार नहीं आयेगा और भोजन साधारण और स्वाभाविक रूप से हजम होकर बेकार पदार्थ मल के रास्ते से निकल जायेगा।

पग-चालन क्रिया का दूसरा प्रभाव मूत्रवाहक संस्थान पर भी पड़ता है। मूत्र निकालना दो ग्रन्थियों का काम है जिन्हें मूत्र-ग्रन्थियाँ वृक्क या गुर्दा (kidney) कहते हैं जिस जगह पर पसलियों का अन्त होता है उसी जगह कटि प्रदेश में मूत्र ग्रन्थियाँ दोनों और रहती हैं। इसकी शक्ल गुठली की तरह है और उस पर एक आवरण रहता है। इसके दोनों ओर से एक एक नली निकलती है जिसे मूत्र प्रणाली कहते हैं। यह मूत्र तैयार होते ही उसे मूत्राशय में पहुँचा देती हैं।

हमारे खाये-पीये का पतला भाग यकृत से होकर गुर्दों में आता है। उस पतले भाग में रक्त, नमक, शक्कर, प्रोटीन आदि अनेक मूल्यवान वस्तुयें होती हैं। साथ ही पित्त का मैल, तेजाब, मूत्राम्ल, गन्दा मैला पानी और सड़ी-गली सेलें आदि अनेक रद्दी और विषैली वस्तुयें

होती है। गुर्दे एक फिल्टर व चलनी का काम देते हैं उनका यह काम है कि वे मैले विषैले अंश मिले हुए पानी को तो मूत्र बना कर नालियों की राह मूत्राशय में भेज देते हैं और जो शरीर के काम आने वाले अंश होते हैं उन्हें यकृत को लौटा देते हैं, गुर्दों का एक काम रक्त को साफ करना भी है। ये रक्त के दूषित अंश को मूत्र में मिला देते हैं और शुद्ध अंश को रक्त की नालियों में दे देते हैं।

गुर्दों का काम है कि हमारे शरीर से मल व विष को बाहर निकालते रहें। यदिवे एक दिन की भी हड़ताल करदें तो हमारे लिए मृत्यु का कारण बन जाय। हमारे कुपथ्य व खाने पीने की गड़-बड़ी से गुर्दों का काम बहुत बढ़ जाता है। वह थकान से हैरान हो जाते हैं। जैसे किसी के गले में एक मन का लोहे का लंगर डाल दिया जावे और उससे कहा जावे कि दिन भर का काम करते भी रहो और बोझ को भी लादे रहो। अथवा एक इञ्जन जिसकी शक्ति चालीस गाड़ियाँ खींचने की हो—उसके पीछे अस्सी गाड़ियाँ जोड़ दी जाय" ऐसे ही जब गुर्दा पर कार्य भार अधिक बढ़ जाता है तो वह अपना कार्य सुचारु रूप से नहीं करते। नतीजा यह होता है कि मल व विष की छनाई नहीं होती और मूत्र में भी अम्ल बढ़ जाता है। कभी शक्कर ज्यादा आने लगती है और कभी अलब्यूमिन आने लगता है। जब रेत ज्यादा बनने लगती तो पथरी पड़ जाती है। इस प्रकार गुर्दों की खराबी से अनेक रोग हो जाते हैं। गुर्दों में कभी-कभी ऐसा दर्द उठता है कि मनुष्य की जान ही ले लेता है।

पग चालन क्रिया से गुर्दों पर भी प्रभाव पड़ता है। पैरों के हिलाने से गुर्दों में उत्तेजना होती रहती है और उनको शक्ति मिलती रहती है। जिससे वे अपना काम सुचारु रूप से करने लगते हैं। पग-चालन क्रिया करने वाला साधक यदि अपने भोजन में असंयम न करे

तो उसके गुर्दे सदैव शक्तिशाली बने रहेंगे और उसमें किसी रोग के होने को सम्भावना नहीं है। मूत्र-वाहिनी नालियों के साधारण रोग तो इस क्रिया को थोड़े दिन करने के बाद आप ही आप अच्छे हो जाते हैं। पग चालन की क्रिया तो साधारण है मगर इसका प्रभाव असाधारण है। यह हमारे महाप्रभुजी की अद्भुत देन है। 卐

नाभि-चालन

जीवन तत्व साधन की चौथी क्रिया का नाम नाभि-चालन है। इसमें दाँयें से बाँयें व बाँयें से दाँयें करवट बदलने की क्रिया की जाती है। इसका यथार्थ रूप वह है कि जिस तरह कोई मगर-मच्छ किसी जीव का भक्षण करके बाहर बालू में आकर अपने पेट को इधर-उधर हिलाता है और बड़े से बड़े जीव को भी हजम कर जाता है, उसी प्रकार इस क्रिया को करके पेट की अग्नि को तीव्र किया जाता है।

इस क्रिया की विधि यह है कि पहले चित्त लेट जाओ। हाथ बगल में पड़े रहें। दोनों पैरों को मिला लो। अब बाँयीं ओर करवट लो, मगर पेट के नीचे का ही भाग घूमे। छाती कुछ उठेगी और दाहिना कन्धा भी कुछ उठ जायेगा। सिर वाकायदा एक ही जगह पर कायम रहेगा बाँयीं करवट लेने के तुरन्त बाद दाहिनी करवट लेलो, इसमें भी धड़ का भाग ही घूमेगा। सिर एक जगह रहेगा। इसी तरह बाँयें व दाँयें करवट पलटता रहे। कहीं रुकने की जरूरत नहीं है। लगातार पल्टा खाता रहे। इस क्रिया को कम से कम पन्द्रह मिनट करनी चाहिए और अधिकतम आध घण्टे तक किया जा सकता है। यदि गिनती से इस क्रिया को किया जावे तो पन्द्रह मिनट में एक हजार बार करवट बदलना पड़ेगा।

इस क्रिया को करने से भूख अधिक लगती है। खाना भी हजम हो जाता है। मन्दाग्नि समाप्त हो जाती है। जिनके पेट में हवा बनती है वह बननी बन्द हो जाती है।

जो भोजन मुख में डाला जाता है उसे पहले दाँतों से चबाया

जाता है। फिर वह गले के रास्ते से पेट में जाता है। पेट यापाक-स्थली या आमाशय एक नाशपाती की शक्ल की एक खोखली थैली, जैसी है। यह बाँई ओर के उदर गह्वर के ऊपरी भाग में और उदर वक्ष व्यवधायक पेशी के ठीक नीचे की ओर है। पाकस्थली के तीन प्रधान स्तर हैं। सबके ऊपर वाला स्तर (**Peritonem**) है। इसके द्वारा यह उदर प्राचीर से संयुक्त रहता है तथा लसिका का दौरान ठीक करने में सहायता करता है। दूसरा मध्यस्तर (**Muscular Coat**) है। यह माँसपेशी का बना है। पाकस्थलो में भोजन का पदार्थ जाते ही ये सब मांसपेशियाँ एक के बाद एक संकुचित होकर लहरें सी उठने लगती हैं जिससे खाया हुआपदार्थ तुरन्त चूर-चूर हो जाता है। तीसरा अन्तरतम स्तर (**Mucous coat**) हैं। इससे रस स्राव होता है। अधिक रस निकलने के लिए इसमें श्लैष्मिक झिल्लीं के बहुत से छोटे-छोटे छेद हैं। इसकी सेलों में कोई रक्तवाहिनी नहीं होती है परन्तु इसकी जड़ तक बहुत सी रक्त वाहिनियाँ जाती हैं। श्लैष्मिक झिल्ली का कार्य रक्त-स्राव करना है।

पेट के अन्दर झिल्ली में एक प्रकार का नमक उत्पन्न होता है। जिसे **Hydrochloric acid** कहते हैं। साथ ही **Pepsin** और **Ranet** नाम के दो रस और होते हैं जोकि भोजन के साथ मिलकर उसे पाचन योग्य बना देते है। इसके बाद भोजन बारीक होकर आँतों में चला जाता है। जब भोजन को दाँतों से अच्छी तरह नहीं चबाया जाता तब पेट का काम बढ़ जाता है और उसकी शक्ति क्षीण होने लगती है। व्यायाम न करने से अथवा अधिक खाने से व गरिष्ठ भोजन करने से तथा अधिक मिर्च मसाला आदि खाने से भी पाचन प्रणाली बिगड़ जाती है और मन्दाग्नि हो जाती है। भूख कम लगती है, खाना ठीक तरह हजम नहीं होता और पाचन प्रणाली बिगड़ने से अनेक प्रकार के रोग हो जाते हैं। इन रोगों को दूर करने के
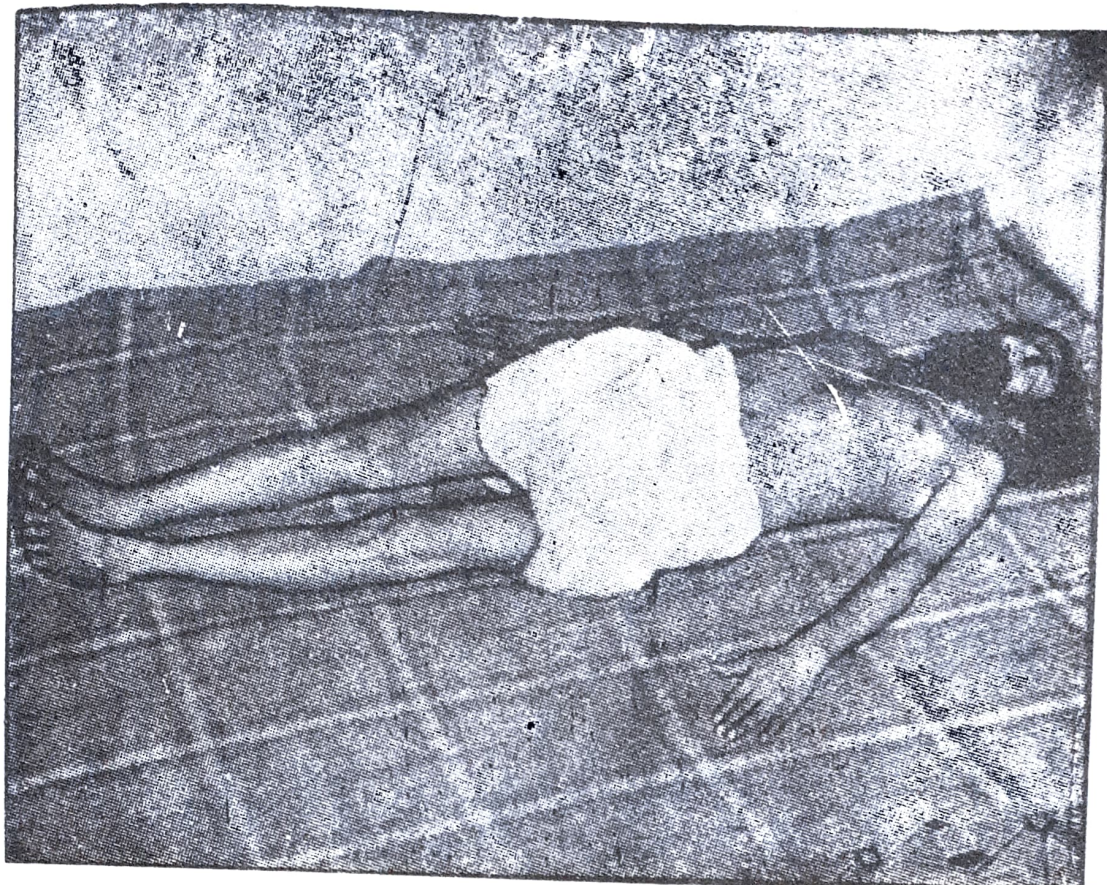
नाभिचालन पेट हिलाना बांई ओर
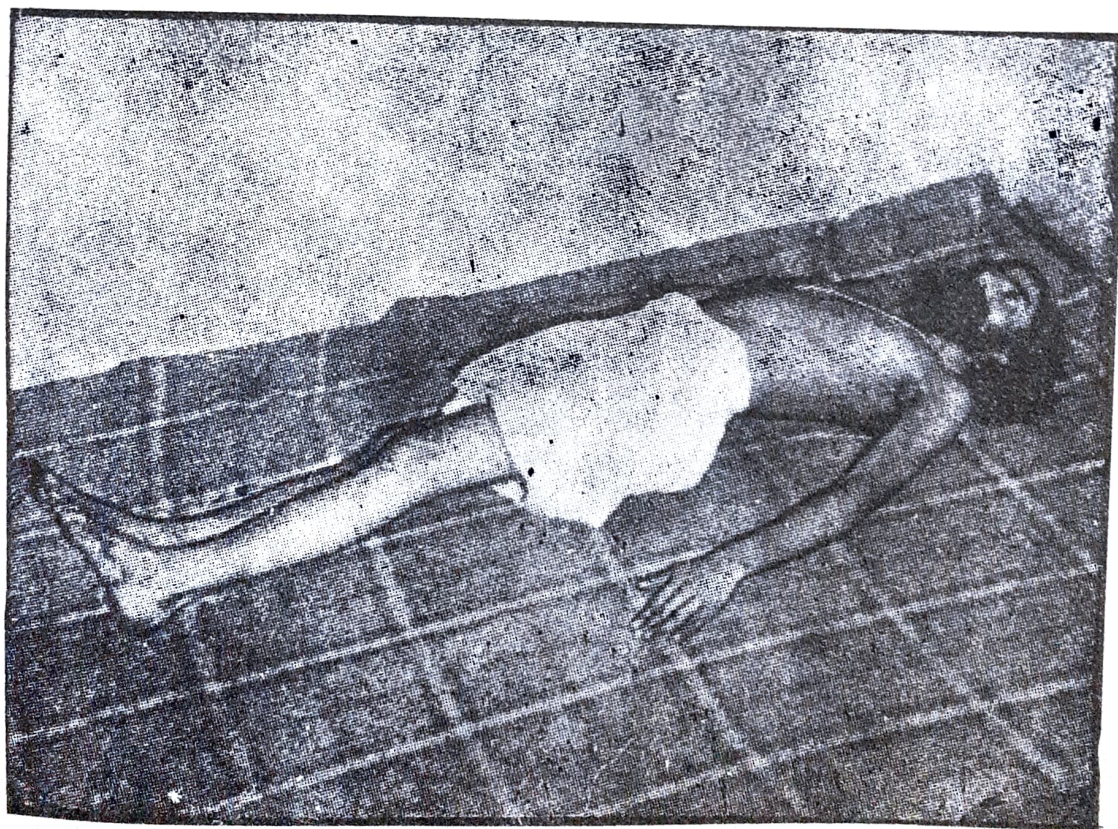
नाभिचालन पेट हिलाना दाहिनी ओर

लिए मनुष्य अनेक प्रकार की दवायें खाता है। मगर उससे क्षणिक लाभ होता है।

नाभि–चालन क्रिया करने से आमाशय को बड़ी शक्ति मिलती है उसकी झिल्लियों से निकलने वाली पेप्सिन व रेनट रस की मात्रा भी बढ़ जाती है और मंदाग्नि दूर होकर भूख लगने लगती है और भोजन अच्छी तरह पच जाता है। जब पाचन प्रणाली ठीक हो जाती है तो शरीर के अन्य रोग भी दूर हो जाते हैं। भगवान् ने गीता में कहा है कि :—

अहं वैश्वानरो भूत्वा
प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणापान समायुक्तः
पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥

अर्थ—मैं सब प्राणियों के शरीर में स्थित हुआ वैश्वानर अग्नि रूप होकर प्राण और अपान से युक्त हुआ चार प्रकार के अन्न को पचाता हूँ।

भक्ष्य भोज्य लेह्य और चोष्य ऐसे चार प्रकार के अन्न होते हैं। जो चबाकर खाया जाता है वह भक्ष्य है जैसे रोटी आदि। जो निगला जाता है वह भोज्य है जैसे दूध आदि। जो चबाया जाताहै वह लेह्य है जैसे चटनी आदि और जो चूसा जाता है वह चौष्य है जैसे गन्ना आदि भोजन के सभी पदार्थ इन्हीं चार के अन्तर्गत आ जाते हैं। इनका पाचन पेट की अग्नि तभी करती है, जब वह प्राण व अपान वायु से युक्त हो जाती है जब अग्नि मन्द पड़ जाती है अब प्राण अपान से

युक्त होकर भी भोजन को नहीं पचा पाती। नाभि-चालन क्रिया की यह विशेषता है कि साधक की अग्नि प्रदीप्त हो जाती है और उसका संयोग प्राण व अपान से भी हो जाता है। यही कारण है कि इस क्रिया को अधिक मात्रा में करने वाले साधक की वैश्वानर अग्नि इतनी तेज हो जाती है कि वह चाहे कच्ची दाल कच्ची सब्जी आदि जो कुछ खावे सब हजम हो जाता है।

नाभि चालन क्रिया से एक और लाभ अनुभव में आया है। जब इस क्रिया को काफी देर तक किया जाता है तो मूलाधार चक्र पर बार-बार धक्का लगता है और वहाँ पर सोई कुण्डलिनी जाग जाती है और ऊपर चढ़ने लगती है। कुण्डलिनी के जाग्रत होने से क्या लाभ होता है इसे योगी लोग जानते हैं। इसी कुण्डलिनी को जाग्रत करने के लिए योगी लोग अनेक प्रकार की हठयोग की क्रियायें करते हैं। इस विषय को हम विस्तार से समझाने का प्रयास करेंगे।

कुण्डलिनी

कुंडली कुटिला कारा, सर्पवत्परिकीर्तिता।
सा शक्तिश्चालिता येन, स मुक्तो नात्र संशयः॥

अर्थ-कुण्डलिनी सांप की तरह चक्कर मारकर बैठी हुई है जो इस शक्ति को चलायमान कर देता है वह मुक्त हो जाता है। इसमें संशय नहीं है।

कुण्डलिनी का स्थान वताने में सबकी भिन्न-भिन्न सम्मतियाँ हैं। कोई Para-Sympathetic System में अथवा कोई Inferior

Vena Cave में बताता है। हठयोग वाले बताते हैं कि कुंडलिनी कुंडा के पास सांप की तरह कुंडल मारकर बैठी हुई है और उसकी दुममूलाधार चक्र में स्थित है। कुंडा का स्थान नाभि और लिंग के बीच में बताते हैं। कुछ पश्चिमी विद्वानों का मत है कि कुंडलिनी माणिपूरक चक्र में पहली और दूसरी LumberVertibra के सीध में Conus Medullaris के पास स्थित है। कुंडलिनी जिस समय जाग्रत होती है उस समय अपना कुंडल छोड़कर धीरे-धीरे ऊपर चढ़ती है और छः चक्रों को भेजती हुई तालुका चक्र [Canervous Plexus] से होकर आज्ञा चक में मिलती हैं। यह चक्र Fifth Cranial Nerve के आँखों वाले बीच का Naso-Ciliary बढ़ाव है। इसका अन्त पुतली के Ciliary माँस पेशियों में नाक की जड़ पर Supera orbital foramen में होता है। यही मनुष्य के मस्तिष्क में तृतीय नेत्र का स्थान है। यहाँ से कुंडलिनी बाह्य चक्र Cere-brum plexus में आती है। उस समय मस्तिष्क का विकास हो जाता है और योगी की आत्मा स्वतन्त्र हो जाती है।

कुछ पश्चिमी विद्वान कुंडलिनी को (Serpent power) के नाम से पुकारते हैं और (Vagus nerve) ही को कुंडलिनी कहते हैं। (Vagus या pneumogastric) अथवा (Tenth Cranial nerve) मस्तिष्क के पिछले भाग से निकलती है और उसकी बहुतसी शाखायें हो जाती हैं इस स्नायु में ही केवल (Efferent) और (Offerent) दोनों प्रकार के तन्तु होते हैं। जब यह (Fourth ventricle) के (Grey matter) से निकलकर Jugular foreman) से बाहर आती है तब उसमें एक प्रकार की सूजन होती है जिसको jugular ganglion कहते हैं। यहाँ से तालुका-चक्र को शाखायें जाती हैं जिसको ganglion nodosum कहते हैं। यहाँ से

Vagus nerve मेरु दण्ड के साथ-साथ गर्दन, छाती और पेट तक जाकर मणिपूरक चक्र में समाप्त हो जाती हैं किन्तु बीच में इसकी शाखायें Autonomic Nerves System स्वतन्त्र नाड़ी मण्डल के Prevertebral plexus को तथा गर्दन में विशुद्ध चक्र को व हृदय में अनाहद चक्र को भी जाती हैं। मणिपूरक चक्र के नीचे भी कुछ शाखायें Renal, heptic splenic और pancreatic plexus को गई हुई हैं और मूलाधार चक्र में समाप्त हो गई हैं।

प्राणायाम में जब प्राणवायु अन्दर ली जाती हैं तब मस्तिष्क के अन्दर स्नायु-केन्दों में एक प्रकार की लहर पैदा होती है जिसको afferent impulse कहते हैं और जब अपान वायु द्वारा श्वास बाहर फेंक दी जाती है तब उस लहर को Efferent impulse कहते हैं। प्राण और अपान वायु जहाँ मिलते हैं वहाँ एक तीसरी लहर पैदा होती है जिसको व्यान वायु अर्थात Reflex impulse कहते हैं। यह लहर मस्तिष्क से अथवा मेरुदण्ड से अथवा Sympathetic nerve centre अर्थात् चक्रों में उत्पन्न होती है। जब Reflex impulse मस्तिष्क में पैदा होती है तो प्राणशक्ति अपान वायु द्वारा शरीर के Skeletal muscles को मिलती है और शरीर में हरकत Conscious sensation सी होती है। किन्तु जब यह लहर मेरु-दण्ड के किन्हीं चक्रों से उत्पन्न होती है तब प्राण व अपान के accelerating effect को उन अंगों में ठीक करती हैं जो उस चक्र से शासित होती हैं। परन्तु यह हरकत conscious sensation से नहीं होती है। किन्तु जब अचेतन कार्य चेतन होना चाहता है तब एक दूसरी लहर उस अंग से मेरुदण्ड द्वारा ब्रह्मरन्ध्र चक्र को जाती है और मस्तिष्क के cortex में पहुँचती है। इस लहर को aecceleratory impulse कहते हैं। यह लहर मस्तिष्क में जाकर हलचल

पैदा करती है। वहाँ से एक दूसरी लहर उत्तेजित इन्द्रिय को आती है। इसको Equipoising **impulse** कहते हैं। यह लहर Vagus तथा **parasympathetic** स्नायु तन्तुओं से गुजरती है और फिर उसी से शासित होती है। उदाहरणार्थ यदि सोते समय हमको किसी कीड़े ने काट लिया और दर्द अधिक न हुआ तो अचेतना में ही हमारा हाथ वहाँ पहुँच कर खुजला देगा किन्तु यदि दर्द अधिक हुआ तो हम चेतन हो जायेंगे। मेरुदण्ड से खबर मस्तिष्क को पहुँच जायेगी और वहाँ से आँखों को आज्ञा होगी कि देखकर काटे हुए स्थान को खुजलाये या दवा लगाये आदि। मस्तिष्क यह कार्य Vagus **nerve** को सौंप देता है। और बाद को सारी कियायें Vagus **nerve** द्वारा ही होती हैं।

शरीर में जो **impulses** हुआ करती है वह प्राण, अपान, उदान व्यान व समान प्राणों दारा हुआ करती है। इन पाँच प्राणों का **impulse** हमारे अधीन नहीं है। अर्थात् हम इनकी लहरों को उत्पन्न होने से रोक नहीं सकते। यदि किसी अंगुली में बिच्छू काट खाये और हम चाहें कि दर्द का कष्ट हमें न हो, तो यह हो ही नहीं सकता दर्द मस्तिष्क तक पहुँचकर हमको बेचैन कर देगा, किन्तु Vagus **nerve** अथवा कुंडलिनी पर प्रभुत्व प्राप्त कर लेने पर हम में यह शक्ति आ जाती है कि हम इन पाँच प्राणों की लहरों को उठने दें या न उठने दें। यहा तक कि हममें इतनी शक्ति आ जाती है कि तमाम स्नायु-तन्तुओं की लहरों को बन्द कर दें और इस तरह शरीर के Katabolic activity अर्थात् हृदय की धड़कन आदि क्रियाओं को भी रोक दें।

प्राणायाम में जब कुम्भक किया जाता है तब श्वास द्वारा **oxygen** शक्ति आनी बन्द हो जाती है और प्रश्वास द्वारा Carbonic acid

gas निकलनी बन्द हो जाती है उस समय रक्त की Venosity बढ़ जाती है। इसकी वृद्धि से कुंडलिनी के मूल में भारी धक्का लगता है। नाभिचालन क्रिया में भी मूलाधार में इसी प्रकार बार-बार धक्का लगता है। उस समय कुंडलिनी में एक लहर पैदा होने लगती है और वह लहर मूलाधार व स्वाधिष्ठान चक्रों से होकर मणिपूरक चक्र में पहुँच जाती है। प्राणायाम के साथ बन्ध भी किया जाता है। यह बन्ध तीन प्रकार के हैं। मूलबन्ध उड्डियान बन्ध तथा जालन्धर बन्धा मूलबन्ध से जब गुदा सकुचित होती है और उस पर धक्का लगा करता है तो अपान वायु का निकलना बन्द हो जाता है और स्वाधिष्ठान चक्र से होती हुई मणिपूरक चक्र में पहुँचती है। जब चक्रों में लहर दौड़ती है तब समस्त Sympathetic fibres में लहर पैदा हो जाती है, और उदर तथा आँतों में गैस एकत्र हो जाती है और उसको चक्कर सें फुला देती है। Splanchnic area की रक्तनालियों के संकोचन से abdominal viscera को रक्त मिलना कम हो जाता है औद उदर व आँतों के स्राव का निकलना बंद हो जाताहै। शरीर में इस प्रकार की गड़बड़ी होने पर रक्त प्रवाह, श्वसन क्रिया व पाचन क्रिया में गड़बड़ी हो जाती है। हृदय तेजी से चलने लगता है। साधक दुर्बल होने लगता है। और कुछ ज्वर मालूम होने लगता हैं। इस समय वह सशंकित हो जाता है और समझता है कि वह बीमार हो गया और भय के कारण प्राणायाम छोड़ देता है। परन्तु यह भय निर्मूल है उसको अपने गुरु की देख-रेख में बन्धों सहित प्राणायाम करते रहना चाहिए। यह समय कुण्डलिनी के जाग्रत होने का होता हैं कुंडलिनी इसको resist करती है किन्तु प्राणायाम करते रहने से वह medulla में अपने स्थान पर इधर-उधर हिलने लगती है और efferent और afferent impulse भेजने लगती हैं। इसी को vagus escape कहते हैं। साधन के आगे बढ़ने पर वह ऊपर चढ़ने

लगती हैं। जैसे-जैसे प्राणायाम के साथ बन्धों को किया जाता है वैसे-वैसे कुंडलिनी ऊपर चढ़ती जाती है और मस्तिष्क में cortex में पहुँचकर ब्रह्मरन्ध्र चक्र में पहुँच जाती है।

इस vagus escape के होने पर जो शरीर में गड़बड़ी हो जाती है उसके सम्बन्ध में हमारे यहाँ के योगी कहा करते हैं कि जब कुंडलिनी जाग्रत होती है तब बड़े वेग के साथ झटका देकर ऊपर की ओर अपना मुँह फैलाती है ऐसा मालूम होता है जैसे बहुत दिनों की भूखी हो और जब जागने के साथ ही खाने को अधीर हो उठी हो। अपनी जगह से नहीं हटती पर शरीर में पृथ्वी व जल के जो भाग हैं उन सब को चट कर जातो है। उदाहरणार्थ—हथेलियों और पाँव के तलों को शोध कर उनका रक्त मांसादि खाकर ऊपर के भागों को भेजती है और अंग प्रत्यंग की सन्धियों को छान डालती है। नखों का सत भी निकाल लेती है। त्वचा को धोकर पोंछ पाँछ कर स्वच्छ करती है और उसे अस्थि पंजर से सटाये रखती है। पृथ्वी व जल इन दो भूतों के खाने के बाद सुषुम्ना में प्रवेश करके ऊपर पहुँच जाती है। उस समय जो चन्द्रामृत का सरोवर है वह उलट जाता है और बह चन्द्रामृत कुण्डलिनी के मुख में गिरता है। इस अमृत को पान करके कुण्डलिनी सन्तुष्ट हो जाती है। शरीर की जो सूखी पपड़ी रहती है वह भूसी की तरह निकल जाती है। उस समय योगी का शरीर हृष्ट पुष्ट हो जाता है। उसकी कान्ति केसर के रंग सीं हो जाती है। उस योगी के देह का प्रत्येक अंग नया और कान्तिमय बन जाता है।

हृष्ट पुष्ट तन भये सुहाये
मानहुँ अबहिं भवन ते आये ॥

नाभि चालन क्रिया की यह विशेषता है कि कुण्डलिनी जाग्रत होकर **efferent** और **afferent impulse** भेजने लगती है किन्तु **vagus escape** नहीं होता और न पाचन क्रिया में गड़बड़ी होती है क्योंकि इस क्रिया में कुण्डलिनी के जगाने के साथ वैश्वानर अग्नि भी प्रदीप्त हो जाती है। बार-बार पल्टा खाते रहने से तथा मूलाधार पर धक्का लगने से प्राणवायु ईडा व पिंगला नाड़ियों में प्रवाहित न होकर सुषुम्ना में प्रवेश कर जाती है और अभ्यास को बढ़ाने पर ऊपर चढ़ने लगती है। नाभि-चालन एक अद्‌भुत क्रिया है जिससे पाचन प्रणाली भी ठीक रहती है। शरीर में कोई रोग भी नहीं होता तथाप्राणायाम बन्ध, मुद्रायें आदि करके जो कुण्डलिनी जाग्रत करने का कष्टमय साधन है वह सब इस क्रिया से सहज रूप में प्राप्त हो जाता है।

जानु प्रसार

जीवन तत्त्व साधन की पाँचवीं क्रिया का नाम जानु प्रसार है। इस क्रिया को नाभि-चालन करने के बाद अवश्य करनी चाहिए। इस क्रिया को करने के लिए पूर्ववत् चित्त लेटा रहे। बायें पैर को तनाव दिए रहे और दायें पैर को मोड़कर बायें जानु पर रखे। पैर को इस तरह रखना चाहिए कि दायें पैर के तलवे बायीं जानु पर सट जायें और मुड़ा हुआ घुटना ऊपर की ओर रहे। अब धीरे-धीरे दाहिने पैर को अपने दायें तरफ जमीन पर लाना चाहिए ताकि दाहिने पैर के घुटने व जानु जमीन से लग जावें। कुछ देर रुक कर दायें पैर को धीरे-धीरे उठाना चाहिए, ताकि घुटने ऊपर उठ जावें, और तलवे जानु पर सटे रहें। इस क्रिया को तीन बार करनी चाहिए इसके बाद दाहिने पैर को सीधा तान देना चाहिए और बायें पैर को मोड़कर उसके तलवे को दायें जानु पर सटाना चाहिए और पूर्ववत् धीरे-धीरे अपने बायें घुटने को बायीं तरफ जमीन पर लाना चाहिए और घुटने व जानु को जमीन पर लगाना चाहिए। कुछ देर रुक कर बायें पैर को ऊपर उठा लेना चाहिए। इस क्रिया को भी तीन बार करनी चाहिए। इस क्रिया में दाहिने पैर को मोड़कर तीन बार जमीन से लगाया जाता है और बायें पैर को मोड़कर तीन बार जमीन पर लगाया जाता है। जमीन पर लगाने व उठाने का काम धीरे-धीरे करना चाहिए। कुल क्रिया ४ मिनट में हो जाती है। समय का विभाजन इस तरह कर लेना चाहिए कि एक पैर को जमीन में लगाने

में पन्द्रह सेकेन्ड लगें, फिर दस सैकेन्ड वहाँ रुका रहे और फिर पाँव को उठाने में पन्द्रह सेकेन्ड लगें। इस प्रकार एक बार करने में चालीस सेकेन्ड लगेंगे और एक पाँव से तीन बार करने में दो मिनट लगेंगे। इसी तरह दूसरे पाँव से तीन बार करने में दो मिनट लगेंगे।

इस क्रिया को करने से जंघाओं व पेट के पूरे स्नायु-मन्डल यथार्थ स्थिति में आ जाते हैं और स्नायुओं में कोई विकृति नहीं रह जाती। नाभि चालन क्रिया करने में जो तनाव व श्रम हो जाता है वह जानु प्रसार करने से ठीक हो जाता है और सभी स्नायुओं का विश्रान्ति मिल जाती है। यह पहले बताया जा चुका है कि शरीर के नस व नाड़ियो के अन्दर से मल को निकालने के लिए उन्हें तनाव व ढीलापन देना चाहिए। इस क्रिया से उस उद्‌देश्य की पूर्ति हो जाती है और शरीर को बड़ा सुख एवं आनन्द मिलता है। इस क्रिया को जल्दी-जल्दी नहीं करना चाहिये। इसको धीरे-धीरे ही करने से लाभ होता है। जानु-प्रसार की क्रिया करने में अंत्रपुट पर विशेष दबाव पड़ता है और उस थैली में पड़े हुये अन्न व गन्दे पदार्थ निकल कर बड़ी आँतों के रास्ते बाहर निकल जाते हैं इस तरह यह क्रिया अंत्रपुट कोष्ठबद्धता को दूर करने में बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है।

स्वाभाविक नियम यह है कि जो कुछ खाया जावे वह पच-कर रक्त आदि बन जावे, और निस्सार पदार्थ आँतों से होता हुआ मल द्वार से बाहर निकल जावे। अनेक कारणों से आँतें अपना काम ठीक प्रकार नहीं करती हैं और अनपचा पदार्थ नालियों में अनेक स्थानों पर चिपक जाता है। इसी को कब्ज कहते हैं। कब्ज और अपच में भेद है। अपच तब होता है जब छोटी आँतों में पाचन रस ठीक तरह से नहीं बनता है और भोजन से सार तत्त्व शरीर को नहीं प्राप्त होता और इस तरह अनपचा भोजन बाहर निकलने को मजबूर हो

जाता है। इस स्थिति को अपच या बदहजमी कहते हैं। कब्ज बड़ी आँतों की गड़बड़ी से होता है। कभी-कभी छोटी बड़ी दोनों आँतें अपना काम ठीक प्रकार नहीं करतीं तब कब्ज व अपच साथ-साथ रहता है। बड़ी आँतों की दीवारों में यत्र-तत्र मल के चिपक जाने से कोष्ठबद्धता हो जाती है किन्तु भयानक प्रकार की कोष्ठबद्धता या कब्ज तब होती है जब अंत्रपुट (सीकम) की थैली में सड़े-गले पदार्थ जमा हो जाते हैं और निकल नहीं पाते। वे वहीं सड़ने लगते हैं और अनेक रोगों को उत्पन्न करते हैं। हमने अपने पिछले लेखों में पाचन-प्रणाली के सम्बन्ध में बहुत कुछ बताया है किन्तु आँतों में होने वाले कब्ज को समझने के लिए पोषण-संस्थान के कार्य को विस्तार से जानना आवश्यक है।

भोजन के ठीक तरह परिपाक होकर नियमित रूप से रस तथा मल बनने का कार्य आमाशय या पाकस्थली से आरम्भ होता है। हम जो कुछ भोजन ग्रहण करते हैं वह अन्न नली द्वारा इस नली में पहुँचता है। अन्न नली के भीतरी भाग में भी बहुत सी छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ होती हैं जो भोजन करते समय एक लसदार पदार्थ निकालने लगती हैं। यदि भोजन कुछ कम चबाया भी होता है तो वह इस लसदार पदार्थ के सहारे आसानी से आमाशय में उतर जाता है।

आमाशय में कई पर्त होते हैं। ऊपर रस का हिस्सा रहता हैं, नीचे श्लेष्मा वाला पर्त है और बीच में स्नायु-पर्त होता है। इसी उपर के पर्त की असंख्यों ग्रन्थियों से पाचक रस निकलता है जिससे भोजन पचकर रस के रूप में परिवर्तित हो जाता है। यह पाचक रस अथवा पित्त कुछ खारा और खट्टे स्वाद का होता है तथा सामान्य स्वास्थ्य वाले मनुष्य के शरीर में प्रति दिन चार पौंड से आठ पौंड तक की मात्रा में उत्पन्न हुआ करता है। यह पाचक रस भोजन में मिलकर उसमें रासायनिक परिवर्तन कर देता है, जिसमें

उसका सार शरीर में सम्मिलित हो सकने योग्य बन जाता है। आमाशय से आगे चलकर भोजन छोटी आँतों में प्रविष्ट होता है। जहाँ यह आँत आमाशय से मिली हैं वहाँ एक पर्दा लगा हुआ है जो भोजन को आँत में जाने तो देता है पर उसमें से किसी पदार्थ को वापस लौटने नहीं देता। आँतों के प्रथम भाग को डियोडिनम कहते हैं, दूसरी भाग को जेज्युनम और तीसरे भाग को इल्यम कहते हैं इस इल्यम के अन्त में श्लेष्मा के पर्दे होते हैं जिनमें छोटी आँत द्वारा रस चूस लिए जाने के बाद बचा हुआ निस्सार अंश बड़ी आँत में ढकेल दिया जाता है। इस बड़ी आँत के भी तीन भाग होते हैं—सीकम कोलन व रेक्टम। इसी को मलाशय के नाम से पुकारा जाता है।

जहाँ छोटी आँत बड़ी आँत से मिलती हैं वहीं एक थैली है जिसे अंत्रपुट या सीकम कहते हैं। सीकम से निकली एक पूँछ होती है जिसे अपेन्डिक्स कहते हैं। कभी-कभी पित्त का कुछ अंश तथा अन-पचे अन्न का भाग तथा अन्य विषैले पदार्थ सीकम में जमा हो जाते हैं और आँतों की कमजोरी के कारण वहाँ से बाहर नहीं निकल पाते और वहीं सड़ने लगते हैं। वे अनेक प्रकार के विषैले कीटाणुओं को उत्पन्न करते हैं और शरीर के अन्य भागों को भेजकर उन्हें रोगी बनाते हैं। कभी-कभी सीकम से कुछ पदार्थ अपेन्डिक्स में पहुँच जाते हैं और भयानक दर्द पैदा कर देते हैं उस अवस्था में डाक्टर लोग अपेन्डिक्स को काटकर निकाल देते हैं और रोगी के प्राण बचाते हैं।

उपर्युक्त विवरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यदि भोजन को बिना ठीक प्रकार से चबाए हुए आमाशय में पहुँचा दिया जायेगा, अथवा स्वाद के कारण भूख की अपेक्षा अधिक भोजन करके आमा-शय के कार्य को बढ़ा दिया जायेगा अथवा जब तक आमाशय में
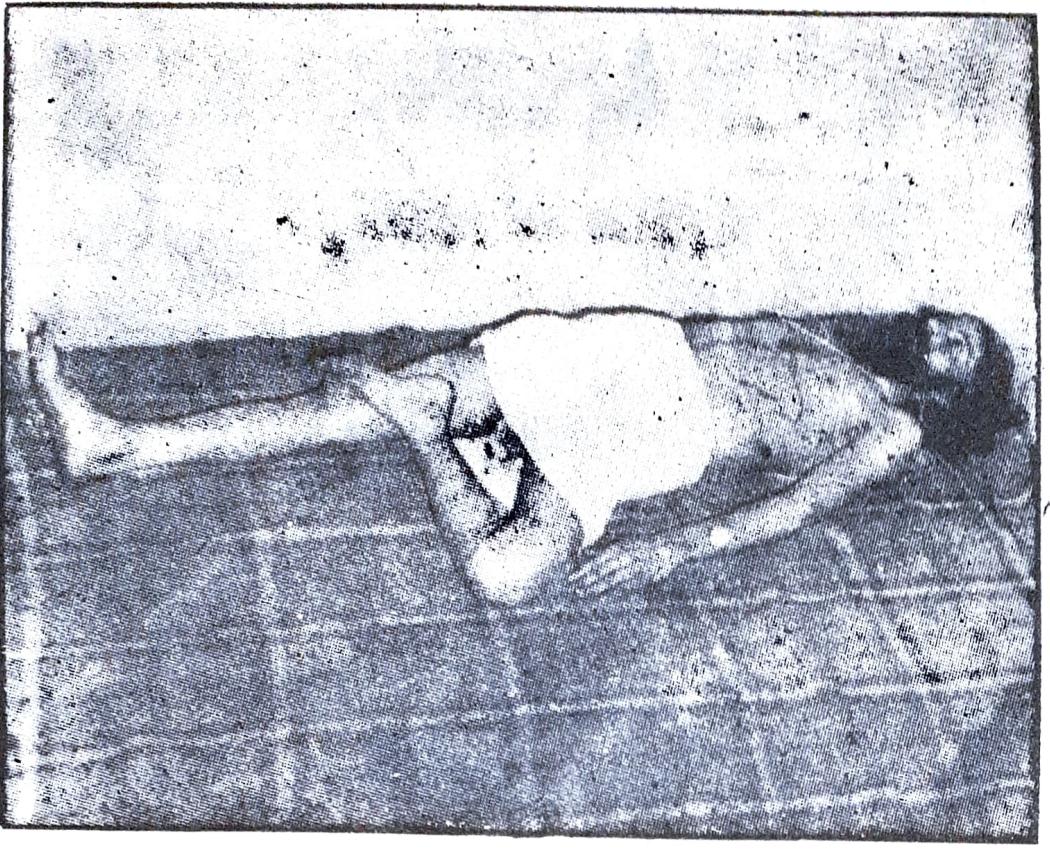
जानु प्रसार (बायें पैर से)
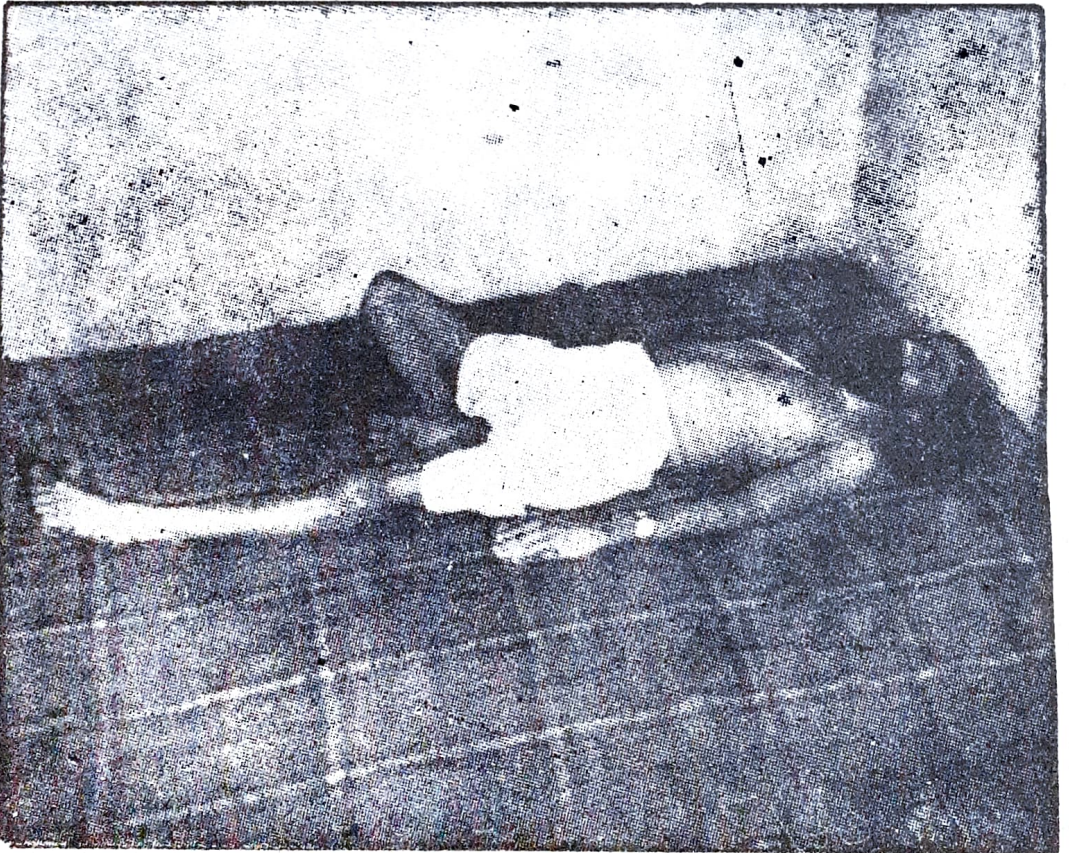
जानु प्रसार (दायें पैर से)

पहले भोजन की पाचन क्रिया चल रही हो तब तक और कोई भोजन चाट या मिठाई आदि खाकर कच्चे रस में सड़ांद उत्पन्न करने का कारण उपस्थित कर दिया जावेगा तो उसका परिणाम समस्त शरीर के लिए हानिकारक ही सिद्ध होगा। ऐसा कच्चा रसयुक्त जब छोटी आँत से गुजरेगा तो उसमें से वे जो रस चूसेंगी वह दूषित हो जायेगा और उससे बने हुए रक्त में भी उस सड़ांद का विष मौजूद रहेगा जो हमारे दिल, फेफड़े, गुर्दे तथा त्वचा आदि के लिए एक भार रूप होगा और सबमें कुछ न कुछ खराबी उत्पन्न करके सिर दर्द, चक्कर आना, चेहरे पर उदासी, दिल का धड़कना, खाँसी, जुकाम आदि रोग पैदा करेगा। रक्त के दूषित होने से बड़ी आँत की शक्ति भी क्षीण हो जाती है और उसके अन्दर पहुँचे हुए भोजन के शेष पदार्थ को मल में परिवर्तित नहीं कर पाती और धीरे-धीरे मलाशय की दीवारों से मल चिपक जाता है और यहीं से कब्ज शुरू हो जाता है।

आहार का जो निस्सार अंश छोटी आँत से बड़ी आँत में मल बनाकर बाहर निकालने के लिए पहुँचाया जाता है वह वहीं पर कई घण्टे तक बना रहता है और धीरे-धीरे गुदा मार्ग तक पहुँच पाता है। इसी बीच में बड़ी आँत की माँस पेशियाँ उसमें से थोड़ा बचा हुआ रस चूसकर एक भिन्न मार्ग से रक्त में मिलने के लिए भेजती रहती हैं। यह निस्सार अंश दूषित होने के कारण सड़ने लगता है और उससे चूसा हुआ रस भी दूषित होकर रक्त में मिल जाता है और शरीर के लिए हानिकारक बन जाता है। मल का अंश पित्त की उत्पत्ति में खराबी पैदा करता है जिससे कलेजे का दर्द, उदर रोग और पीलिया आदि रोगों की उत्पत्ति होती है।

इस प्रकार जब मलयुक्त रस हृदय में पहुँचता है तो उसे भी

हानि पहुँचती है। मलांश को दूर करने के लिए उसे अधिक वेग से काम करना पड़ता है जिससे उसका धड़कना बढ़ जाता है। इससे थोड़ा सा मेहनत का कार्य करने से ही थकावट और हंफाई आ जाती है। तबियत सुस्त व उदास बनी रहती है।

जब मल बड़ी आँत में देर तक भरा रहता है और चिपका रहता है तो उसमें बिषाक्त तत्त्व पैदा हो जाते हैं और उसमें क्षय के कीटाणु पैदा हो जाते हैं। ये कीटाणु रक्त के साथ फेफड़ों में पहुँच जाते हैं और किसी कोने में अड्डा बना लेते हैं। इस तरह तपेदिक का भयंकर रोग कब्ज से ही उत्पन्न होता है।

बवासीर की बीमारी का कारण तो प्रायः कब्ज़ से होती है। अधिक समय तक बैठे रहने की आदत से और व्यायाम न करने से तथा शराब व गरम भोजन करने से और आंतों में मल का भार इकट्ठा हो जाने से गुदा के भीतर की मांस पेशियां बढ़ जाती हैं और उनमें रक्त बढ़ जाता है। इससे वहाँ का मांस फूलकर सख्त पड़ जाता है। उसी को बवासीर का मस्सा कहते हैं। जब ये मस्से मल निकलने का दबाव पड़ने से फट जाते हैं और उससे खून निकलने लगता है, तो उसे खूनी बवासीर कहते हैं।

एक बार अमेरिका में कई डाक्टरों ने मिलकर लोगों के मलाशय की वास्तविक अवस्था का पता लगाने का विचार किया और बीमार होकर मरने वाले व्यक्तियों की लाशों को चीर कर उनकी परीक्षा करने लगे। उन्होंने एक-एक करके २८४ लाशों को चीर कर देखा। इनमें २५६ व्यक्तियों के मलाशय सड़े हुए मल से भरे थे। किसी-किसी का मलाशय तो मल की अधिकता से फूलकर दुगना हो गया था। कितने ही व्यक्तियों का वर्षों पुराना मल सूखकर पत्थर की तरह कड़ा हो

गया था और बड़ी आँत की अगल-बगल में चिपककर जम गया था। जब डाक्टरों ने उस सूखे मल को छूरियों से काटकर निकाला तो दिखाई पड़ा कि उसके भीतर तरह-तरह के कीड़ों ने अपना घर बना रक्खा है और उन कीड़ों ने कितने ही लोगों की आँत को काटकर घायल कर दिया है। उन्हीं घरों में कीड़ों ने अण्डे भी दे रक्खे थे। यद्यपि यह मल वर्षों में सूखकर इतना कड़ा हुआ था और उनका मलाशय बीसों वर्षों से ऐसी ही कड़ी हुई हालत में था, पर मरने के कुछ समय पहले तक वे खाते थे और अपने को स्वस्थ भी समझते थे।

डा० टर्नर ने लिखा है कि आठ आदमियों में से केवल एक की ही बड़ी आँत साफ रहती होगी। शेष लोगों को साधारण रीति से नित्य शौच हो जाता है और इससे वे यह समझ लेते हैं कि हमारा पेट साफ है। पर वास्तविक बात यह होती है कि मलाशय के पूरा भर जाने से उसके नीचे के भाग का मल नीचे खिसक आता है और मलाशय सदा भरा ही रहता है। इस प्रकार का मनुष्य वर्षों तक पाँच फीट लम्बे मल से भरे थैले को पेट के भीतर रखकर चलता-फिरता और सोता है। लोगों से मिलता-जुलता है, खाता-पीता है और अन्त में दुनियाँ से कूच कर जाता है।

जब मनुष्य को कब्ज अधिक सताता है और उसे साफ शौच न होने की तकलीफ होती है तब वह पाचक चूर्णों, रेचक ओषधियों, जुलाब आदि का लेना उचित समझता है और इनका प्रयोग भी करता है। थोड़े समय तक जब तक शरीर नवीन रहता है और काफी शक्ति रहती है, वे ऐसा अनुभव भी करते हैं कि हमको दवाओं से लाभ हो रहा है पर वह शक्ति वस्तुतः उनके शरीर की ही होती है जो दवाओं से क्षणिक रूप से उत्तेजित होकर अपना प्रभाव दिखाती है। सच

पूछा जाय तो ये ओषधियाँ शरीर के लिए विष तुल्य हैं। जब यह विष पाकस्थली में पहुँचता है तो शरीर के लिए प्रकृति-विरुद्ध पदार्थ होने से शरीर के अंग उसे शीघ्र बाहर निकालने का प्रयत्न करते हैं। इसके परिणामस्वरूप उन अंगों से पाचक रस बड़ी मात्रा में बाहर निकलने लगता है और उसी के साथ ओषधि बड़ी आँत में एकत्रित मल का कुछ अंश भी बाहर निकाल देती है। किन्तु बार-बार ऐसी दवाओं के सेवन करने से पाकस्थली की शक्ति कमजोर हो जाती है फिर आँतें अपना काम सुचारु रूप से नहीं करती और तब ओषधियों का भी असर नहीं होता। फिर कहना पड़ता है कि मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा की।

कब्ज को दूर करने के लिए एनिमा का प्रयोग एक प्रभावशाली उपाय है। इससे मलाशय की अच्छी सफाई हो जाती है। किन्तु थोड़े पानी का एनिमा लेने से पूरे आँत की सफाई नहीं होती क्योंकि वह जल सीकम की थैली तक तो पहुँचता ही नहीं। यदि एक दो सेर पानी का एनिमा लिया जावे तो सचमुच पूरी आँतों में पानी पहुँच जाता है और सीकम में पड़े हुए कूड़ा करकट को भी बहा ले जाता है। किन्तु कभी-कभी ऐसा होता है कि सीकम में जल पहुँच तो जाता है मगर आँतों की कमजोरी से शौच के समय वह बाहर नहीं निकल पाता और वहीं सड़ने लगता है। यदि एनिमा या बस्ति क्रिया के बाद उड्डियान बन्ध या नौली क्रिया कर ली जावे तो अवश्य पूरे आँत की सफाई हो जाती है और सीकम में भी दबाव पड़ने से उसके अन्दर पड़े हुए पदार्थ जल के साथ बाहर निकल जाते हैं। अतः जो बस्ति और नौली क्रिया करते रहते हैं उनके मलाशय सदैव साफ रहते हैं।

जीवन तत्त्व साधन की तीन क्रियायें पग-चालन, नाभि-चालन और जानु प्रसार ऐसी विचित्र हैं कि इनसे बिना किसी वाह्य उपचार

के पेट व आँतों की सफ़ाई हो जाती है। पग–चालन तथा नाभि–चालन से आमाशय व आँतों पर बराबर तनाव पड़ता है जिससे उनकी क्रियाशीलता बढ़ जाती है। बार-बार हिलने-डोलने से चिपके हुए मल छूट जाते हैं और वे स्वाभाविक रूप से बाहर निकल जाते हैं। जानु-प्रसार करने से बड़ी आँतों पर तथा सीकम की थैली पर विशेष दबाव पड़ता है और उनमें फँसे हुए मल निकल जाते हैं।

जीवन तत्त्व साधन की इन क्रियाओं का आविष्कार करके महा-प्रभु योगेश्वर श्री रामलाल जी ने कितना जन कल्याण किया है इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। जो लोग इन क्रियाओं को नित्य नियम से विधिपूर्वक करते रहेंगे वे कभी पेट के रोगों से पीड़ित नहीं होंगे और पेट के ठीक रहने से शरीर के अन्य रोग भी दूर हो जाते हैं। ❋

बाल मचलन

जीवन तत्त्व साधन की छठी क्रिया का नाम बाल मचलन है। जब छोटे बच्चे अपनी माता से रूठ जाते हैं तब वे चारपाई पर पड़े-पड़े हाथ-पैर चलाया करते हैं। इस क्रिया को करने के लिए सीधे चित्त लेट जाइये, दोनों हाथों की मुट्ठियों को बाँध लीजिए और हाथों को कड़ा करके दोनों पैरों तथा हाथों को उसी प्रकार जल्दी-जल्दी चलाना चाहिए जैसे बच्चे मचलने के समय करते हैं। दोनों हाथ छाती के पास आगे पीछे चलते रहेंगे। पाँव भी आगे–पीछे होते रहेंगे। इस क्रिया में जब दायें पैर को ऊपर करेंगे तो दायाँ हाथ ऊपर चला जायेगा और जब बायाँ पैर ऊपर करेंगे तो बायाँ हाथ ऊपर की ओर चला जायेगा। इस प्रकार से दोनों हाथों व पैरों को क्रमशः जल्दी–जल्दी चलाना चाहिए किन्तु सिर यथार्थ रूप में जमा रहना चाहिए। इस क्रिया को एक मिनट तक करनी चाहिए।

इस क्रिया को करते समय साधक की मनोभावना एक बच्चे की तरह हो जाती है और शरीर में एक स्वाभाविक आल्हाद पैदा हो जाता है। हाथ-पैरों को वेगपूर्वक चलाने से जो शरीर के नस-नाड़ियों का व्यायाम हो जाता है उसका लाभ तो अलग है ही। पर सबसे बड़ा लाभ मन की प्रसन्नता से सम्बन्ध रखता है। आज वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है कि खूब जोर से हँसने से स्वास्थ्य में बड़ा सुधार हो जाता है। मन में विकार आने पर अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। ईर्ष्या-द्वेष से तिल्ली व जिगर के रोग हो जाते हैं। निराशा

और डर से हृदय रोग हो जाता है। कोध और घृणा से गुर्दों में विकार हो जाता है। चिन्ता से छाती और सिर में फोड़े व पीलिया रोग हो जाते हैं।

क्रोधी माँ का दूध पीने से बच्चों को प्राय: दस्त आने लगते हैं। चित्त की प्रसन्नता से कोई बीमारी नहीं होती और मनुष्य दीर्घायु प्राप्त करता है। प्रसन्न चित्त होकर भोजन करने से भोजन खूब पच जाता है। प्राचीनकाल में जब राजा लोग भोजन करते थे, उस समय विदूषक और हँसमुख व्यक्ति वहां हँसी का वातावरण उत्पन्न करते थे।

मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि दिन में कम से कम एक बार खूब जोर से ठट्ठा मार कर हँसना आवश्यक है। यदि किसी अन्य से न हँस सको तो अपना ही चेहरा शीशे में देखो और हँसो। बाल मचलन करने वाले को तो एक बार हँसने और प्रसन्न होने का अच्छा मौका लग जाता है। यदि आपको हँसने का अवसर नहीं मिलता तो बाल-मचलन क्रिया कीजिए। इसके पश्चात् आप देखेंगे कि आपमें प्रसन्नता की लहर दौड़ने लगेगी और आपको दिन भर तरोताजा बनाये रक्खेगी। इस क्रिया में यही गुण नहीं है कि करने वाला ही प्रसन्न होता है वरन् जो कोई दूसरा देखता है वह भी बिना हँसे नहीं रहता। प्रसन्न चित रहने का यह एक क्रियात्मक साधन है।

अंग्रेजी में एक कहावत है कि Laugh three times a day and keep the doctor away. अर्थात् दिन में तीन बार हँसो और डाक्टर को दूर रक्खो। यदि आप दिन में तीन बार बाल-मचलन क्रिया करने लगें तो अनायास हँसने का मौका मिल जायेगा और आपको डाक्टर या वैद्य का द्वार नहीं खटखटाना पड़ेगा। प्रसन्न चित्त

रहने के सम्बन्ध में कतिपय विद्वानों के मत निम्नलिखित हैं :—

१. हँसो, शरीर से पुष्ट बनोगे। (बेन जानसन)

२. हँसो, दीर्घकाल तक जीओगे। (शेक्सपीयर)

३. प्रसन्न मुख को देखकर बड़े लोग भी खुश होते हैं। (वर्ड्सवर्थ)

४. हँसने के समान आरोग्यदायक दूसरा व्यायाम नहीं। (प्र. फ्लैंड)

५. बिना हँसी के जीवन तो डरावना है। (थकरे)

६. जब तू हँसेगा तो विश्व भी तेरा साथ देगा। (बिल्कावस)

७. घर में बच्चों के हँसने-कूदने की ध्वनि पृथ्वी का अत्यन्त मधुर नाद ही है।

८. स्वच्छ मन और हास्य देखते ही मालूम हो जाता है कि वह कितना शुद्ध और आनन्दयुक्त है। (विक्टर ह्यूगो)

आज तक जितने व्यायाम मानव समाज में प्रचलित हैं उनमें खिलखिलाकर हँसना सर्वश्रेष्ठ है। क्योंकि हँसने से हमारे समस्त स्नायुओं पर समान तनाव पड़ता है। ईश्वरीय सृष्टि में हँसी का आनन्द लेने का अवसर केवल मनुष्य को ही प्राप्त है, क्योंकि पशु-पक्षी आदि रो तो सकते हैं पर हँस नहीं सकते। चिन्ताओं से मुक्त होने के लिए और प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए मनुष्य अनेक प्रकार का उपाय करता है। कोई नशा पीता है, कोई जुआ, ताश, शतरंज खेलता है। कोइ सिनेमा देखता है तो कोई दोस्तों में बैठकर गप्पबाजी करता है। किन्तु ये सब उपाय अनैतिक तथा पैसा व समय नष्ट करने वाले हैं। यदि थोड़ी सी प्रसन्नता मिलती भी है तो उसके बदले
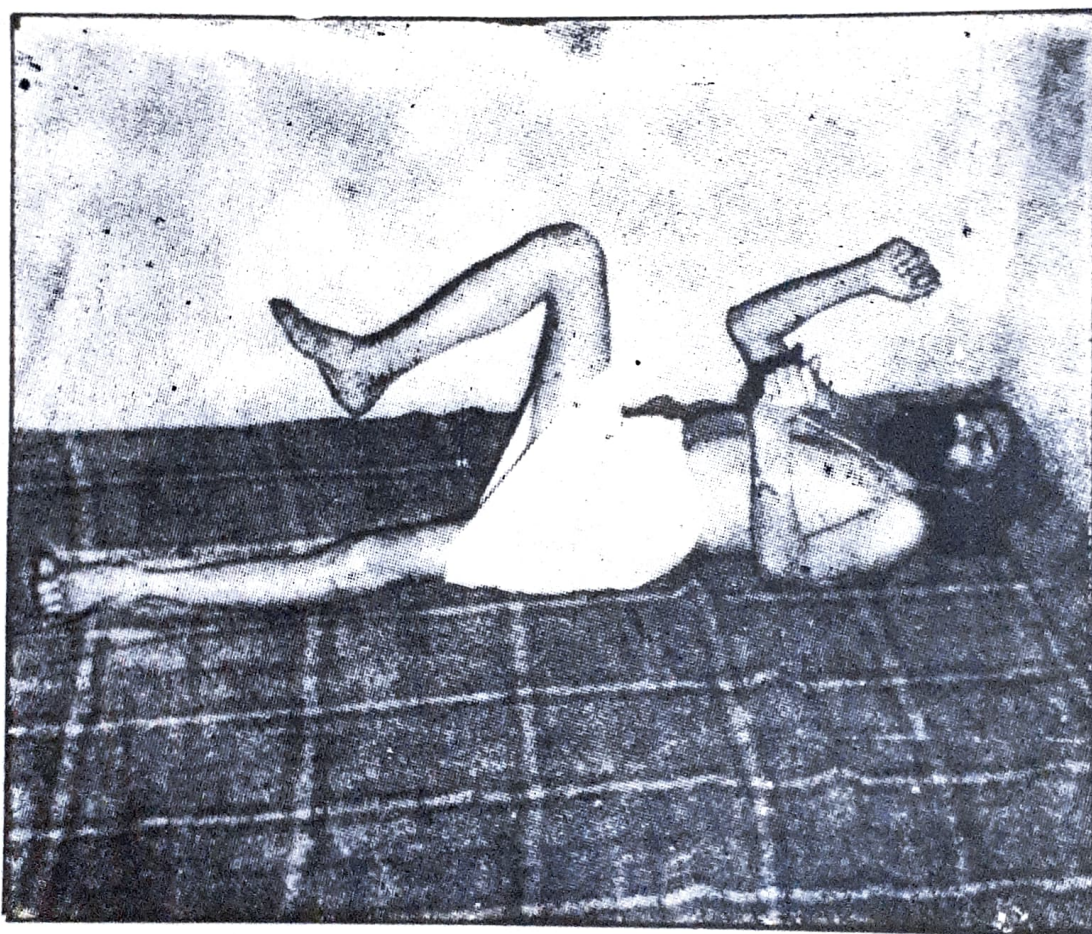
बाल मचलन

भारी कीमत चुकानी पड़ती है। बाल–मचलन की क्रिया कितनी आसान, बिना खर्च वाली, कम समय वाली तथा अधिकतम लाभ देने वाली है। अन्य उपायों से प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए वाह्य उपकरण की आवश्यकता पड़ती है किन्तु बाल–मचलन बिना किसी अन्य उपकरण के कहीं भी की जा सकती है और प्रन्नता का लाभ उठाया जा सकता है। श्री महाप्रभुजी का यह एक अनोखा आविष्कार है जो युवकों एवं वृद्धों को भी बालक बना देता है।

हमारा शरीर असंख्य जीवित सेलों का एक समूह है। हमारे मन व मस्तिष्क के प्रत्येक भले–बुरे अनुभव का प्रभाव उस पर पड़ता है। क्रोध के कारण मनुष्य का सम्पूर्ण शरीर गरम हो जाता है, काँपने लगता है। भय के समाचार से रोंगटे खड़े हो जाते हैं, दिल धड़कने लगता है। चित्त जब प्रसन्न होता है तो सारा चेहरा फूल के समान खिला हुआ दिखाई देता है। आँखें हँस रही सी जान पड़ती हैं। जो बालक परीक्षा में उत्तीर्ण होने का शुभ समाचार देने के लिए घर दौड़ता है। उसका शरीर आनन्द के मारे उससे भी आगे निकल जाने को करता है। यह बात गलत है कि जब कोई कष्ट आ पड़ता है तो चिन्ता व शोक घेर लेते हैं और मनुष्य का वश नहीं चलता। जिनको अपने स्वास्थ्य-सुधार का ध्यान है वे सदैव हर हालत में प्रसन्न रहने का अभ्यास करते हैं। एक व्यक्ति दो रुपये कमाता है, वह रोता है और एक फकीर खाली जेब है मगर वह हँसता है और मस्ती से गाता है। यह सब मन का फेर है। यदि आपका मन बहुत समझाने पर भी हँसता नहीं है और हर समय चिन्तित व खेदयुक्त रहता है तो आप बाल-मचलन क्रिया का अभ्यास कीजिए। ऐसा करने पर आप देखेंगे कि प्रसन्नता आपके पास दौड़ी आ रही है।

रोगी की चिकित्सा में प्रसन्नता का बड़ा हाथ है। एक बार

पाँच व्यक्ति नाव पर कहीं जा रहे थे। निश्चित स्थान दूर था तभी एक व्यक्ति के पेट में तीव्र पीड़ा उत्पन्न हो गई। जो मचलने लगा। उसी पार्टी का एक व्यक्ति बड़ा हँसोड़ा था। उसको एक सुन्दर कहानी याद आ गई और वह सुनाने लगा, जिसको सुनकर सभी के पेट में बल पड़ गये। सभी लोग हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये। वह पेट का रोगी व्यक्ति भी हँसा और खूब हँसा, जिससे उसके पेट का दर्द एक बारगी दूर हो गया।

एक मनोवैज्ञानिक चिकित्सक के पास एक युवक को लाया गया उसकी आयु बीस वर्ष की थी। वह हृदय रोग से पीड़ित था। जाति का ठाकुर होते हुये भी अति दुर्बल था। उसके पिता व चाचा की अच्छी खेतीबारी थी और उन दो भाइयों के बीच वही अकेला लड़का था। युवक के रोगी होने पर उसके पिता ने उसे अच्छे-अच्छे वैद्यों-डाक्टरों को दिखाया और हजारों रुपया इलाज में खर्च किया, मगर कोई लाभ नहीं हुआ। अन्त में उसे लखनऊ मेडिकल कालेज ले गये और वहाँ डाक्टरों ने एक्स-रे आदि करके बतलाया कि युवक के हृदय की झिल्ली पर एक ट्यूमर बन गया है, जो दवा से ठीक नहीं हो सकता। उसका आपरेशन ही इलाज है, किन्तु हृदय का आपरेशन नाजुक है और हो सकता है कि रोगी की मृत्यु हो जावे। अतः डाक्टरों ने कहा कि यदि युवक के पिता बाण्ड भर देवें तो आपरेशन किया जा सकता है। युवक के पिता भयभीत होकर घर लौट आये और अपने परिजनों से सलाह करने लगे। उसी समय किसी ने उक्त मनोवैज्ञानिक चिकित्सक का पता बताया और कहा कि उनसे भी राय ले ली जाय।

मनोवैज्ञानिक ने युवक की पत्नी से, उसके माता-पिता से अनेक प्रश्न किये और रोग के कारण का पता लगाकर कहा कि आपरेशन

की कोई आवश्यकता नहीं है। यह युवक मनोवैज्ञानिक चिकित्सा द्वारा ठीक हो जायेगा। उसके घर वाले बहुत प्रसन्न हुए और हजारों रुपये देने को तैयार हो गये। मनोवैज्ञानिक ने कहा—कि इसके इलाज में दो मास लगेगा और इस बीच युवक की स्त्री, माता-पिता, चाचा, बहिन आदि सभी परिजनों को मेरे पास आना पड़ेगा तथा मेरे प्रश्नों का सही उत्तर देना होगा ताकि मैं रोग की ग्रन्थि को खोल सकूं और युवक को स्वस्थ बना सकूं। ऐसा ही किया गया और दो मास में वह युवक स्वस्थ हो गया। उसका पुनः एक्स-रे कराया गया तो ट्यूमर का कहीं पता नहीं था। सभी विकार दूर हो गये और वे लोग प्रसन्नता पूर्वक अपना जीवन विताने लगे।

मनोवैज्ञानिक ने अपनी डायरी में लिखा है कि प्रश्नों द्वारा यह मालूम हुआ कि जब युवक १२ वर्ष का था तभी उसका बिवाह कर दिया गया। उसकी स्त्री एक पढ़ी-लिखी आधुनिक विचारों वाली लड़की थी।

उसकी आयु १६ वर्ष की थी। लड़की स्वस्थ और यौवन पर थी युवक १२ वर्ष का दुबला-पतला बालक था। पहले ही दिन लड़की ने अपने बालक पति को फटकार दिया और उसका तिरस्कार किया। युवक को कुछ ठेस लगी और वह बीमार रहने लगा। लड़की अपने मायके चली गई और पुनः ससुराल जाने से इन्कार कर दिया। युवक के मन पर एक प्रहार हुआ और उसका जिगर बढ़ गया। उसे पीलिया रोग हो गया और अधिक कमजोर होने लगा। उसके पिता ने अच्छे-अच्छे डाक्टरों द्वारा उसका इलाज कराया और धीरे-धीरे वह स्वस्थ हो गया। उसकी दुर्बलता जाती रही और वह खेती-वारी का काम देखने लगा। अब उसकी आयु १६ वर्ष की हो गई। उसके पिता और चाचा ने उसका दूसरा विवाह एक अच्छी-सी लड़की से

कर दिया। दैवयोग से इस बार बिवाह के बाद जो लड़की आई वह बीस वर्ष की थी। वह बड़ी स्वस्थ, सुन्दर और आकर्षक थी। कुछ दिन तो पति-पत्नी का साथ चलता रहा, किन्तु लड़का छोटा था और लड़की बड़ी इससे मेल नहीं बैठा। लड़की के मन पर असन्तोष छा गया और लड़का हीन भावना से ग्रस्त हो गया।

युवक का पिता प्रौढ़ शरीर से स्वस्थ व रूपवान था। घर में अपने लड़के की बहू को नित्य देखता था। धीरे-धीरे उसके मन में विकार उत्पन्न हो गया और कालान्तर में युवक के पिता का अनैतिक सम्बन्ध युवक की पत्नी से हो गया। कुछ दिन तो यह मामला छिपे-छिपे चला, मगर भेद खुलता गया। अब तो वह लड़की अपने पति के सामने उसके कमरे से उठकर श्वसुर के कमरे में चली जाती और वहीं रात बिताती। युवक हीन भावना से ग्रस्त थां। उसमें विरोध की शक्ति नहीं थी। वह अपनी निगाहों से इस दुराचार को देख रहा था और प्रतिशोध नहीं कर पा रहा था। इससे उसके हृदय पर गहरा आघात लगा और परिणामस्वरूप उसके हृदय पर ट्यूमर निकल आया।

मनोवैज्ञानिक ने अपनी चिकित्सा पद्धति द्वारा सभी भेदों का रहस्योद्घाटन कर दिया। उसने परिवार के सभी लोगों को बुलाकर उनके विचारों में परिवर्तन किया। युवक और युवती को समीप लाने के लिये अनेक मनोवैज्ञानिक उपाय किये और थोड़े दिनों के लिए उस दम्पति को पहाड़ों पर ले गया और वहाँ उन्हें प्रसन्नतापूर्वक एक दूसरे से मिलने, घूमने, खेलने, खाने और विहार करने की सुविधा प्रदान करदी। युवक के आहार-विहार में समुचित परिवर्तन करके उसका स्वास्थ्य सुन्दर बना दिया। लड़की के विचारों में भी परि-

वर्तन आ गया और वह अपने पति से प्रेम करने लगी । दोनों प्रसन्नता पूर्वक जीवन यापन करने लगे। इस प्रकार वह युवक बिना किसी ओषधि या आपरेशन के स्वस्थ हो गया। मनोवैज्ञानिक का मूलमन्त्र था मन में छिपे विकारों को बाहर कर देना तथा प्रसन्नता का जीवन में प्रवेश करा देना । प्रसन्नता वह संजीवनी बूटी है जो भयंकर से भयंकर रोगों को भी दूर कर सकती है ।

भगवान् श्रीकृष्ण ने भी कहा है कि—

प्रसादे सर्व दुःखानां, हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्न चेतसो ह्याशु, बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ।

अर्थात्

पाकर प्रसाद पवित्र जन, के दुःख कट जातेसभी ।
जब चित्त नित्य प्रसन्न रहता, बुद्धि दृढ़ होती तभी ।

अर्थ—प्रसन्नता के होने पर सम्पूर्ण दुःखों का नाशहो जाता है। प्रसन्न चित्त वाले पुरुष की बुद्धि शीघ्र ही स्थिर हो जाती है ।

प्रसाद का साधारण अर्थ प्रसन्नता है। ऐसी प्रसन्नता जो हर्ष-विषाद में एक रस बनी रहती है। कठिन से कठिन दुःख में भी जिस पर उदासी की छाया नहीं पड़ती। जिसके अन्तर में प्रसन्नता का संगीत छिड़ा रहता है उस पर बाहरी सुख-दुःखों का प्रभाव नहीं पड़ता ।

उपनिषद् कहती है कि—

आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न, बिभेति कुतश्चनेति ।

ब्रह्म आनन्दमय है। आनन्दरूप ब्रह्म को जान लेने वाला कभी किसी प्रकार के दुःखों से भयभीत नहीं होता। सदा प्रसन्न रहना मानसिक तप है। प्रसन्नता के अभाव में व्याकुलता, अशान्ति एवं घबड़ाहट रहती है। प्रसन्नता से शान्ति और स्थिरता आती है। प्रसन्नता में बुद्धि को कोई क्लेश, अभाव, राग-द्वेष अथवा विकार अशान्त नहीं कर पाते। प्रसन्न चित्त वाला सदा आनन्द के समुद्र में हिलोरें लेता है। कठिन से कठिन संकट में भी उसके मुख पर मुस्कराहट खेलती है। वह अपनी प्रसन्नता से दूसरों के हृदयों केजमे हुए मैल को धो देता है।

एक वकील साहब थे उनकी स्त्री थी। किसी दिन वकील साहब पत्नी पर नाराज हो गये और कुछ अपशब्द कह गये। पत्नी भी तेज तर्रार थी। उसने भी दो-चार कटु बचन बोल दिये। बस फिर क्या था, एक दूसरे के साथ बोलना बन्द हो गया। वकील साहब का भोजन उनके कमरे में आ जाता और वे वहीं खाकर कचहरी चले जाते। वापस आते तो बाहर कमरे में बैठकर समय बिताते। कई दिन इस प्रकार बीत गये। एक दिन बकील साहब के मन में विचार आया कि यह क्या मुसीबत है। एक ही घर में हम रहते है। वहपत्नी है, मैं पति हूँ। हम आपस में बोलते नहीं है। पत्नी के मन में भी यही विचार आया, परन्तु अब पहल कौन करे ?

वकील साहब का एक आठ वर्ष का लड़का था। वह बड़ा ही हँसोड़ व प्रसन्न चित्त था। वह किसी कीर्तन में गया था और वहाँ से एक गाना सीख आया जिसकी पहली पंक्ति थी :—

मुख से कड़वे बोल न बोल।

एक दिन वकील साहब कचहरी से आये तो उनका लड़का उनके कमरे में आ पहुँचा और वहीं बैठकर गाने लगा—

मुख से कड़वे बोल न बोल।

वकील साहब ने सुना तो बोले—देख बेटा ! यहाँ नहीं, अपनी माँ के कमरे में जाकर गा।

बच्चा वहाँ से माँ के कमरे में पहुँचा और एक ओर बैठकर गाने लगा—

मुख से कड़वे बोल न बोल।

माँ ने यह बात सुनी तो मुस्करा उठी और बोली—देख बच्चे यह बात अपने पिताजी से जाकर कह। बच्चा वहाँ से हँसता हुआ उठा और अपने पिताजी के कमरे में जाकर गाने लगा—

मुख से कड़वे बोल न बोल।

वकील साहब ने कहा —अरे तू फिर आ गया। तुझे कहा कि अपनी माँ के कमरे में जाकर गा। बच्चे ने हँसते हुए कहा कि बड़ी मुसीबत है। माँ के कमरे में जाता हूँ तो वे कहती हैं कि पिताजी के कमरे में जाकर यह गीत गा और आपके कमरे में गाता हूँ तो आप कहते हैं कि माँ के कमरे में जाकर गा। मैं अब किसी के कमरे में नहीं जाऊँगा। दोनों कमरों के बीच में बैठकर गाऊँगा—

मुख से कड़वे बोल न बोल।

माँ अपने कमरे के द्वार पर खड़ी थी और पिता अपने कमरे के द्वार पर। दोनों इस गीत को सुनकर हँस पड़े। दोनों के मन का मैल कट गया। दोनों में मिलाप हो गया। यह है—प्रसन्नता का जादू। प्रसन्न चित्त लड़के ने अपने माता-पिता के मन के मैल को हँसते हुए गीत गाकर दूर कर दिया।

प्रसन्नता का मूल्यांकन नहीं हो सकता है। यह बाजार में भी नहीं मिलता है। यह अपने अन्दर से उठने वाली वस्तु है। यदि आप प्रसन्नता प्राप्त करना चाहते हैं तो बाल-मचलन क्रिया कीजिए और आपका हृदय आल्हाद से भर जायेगा। 卐
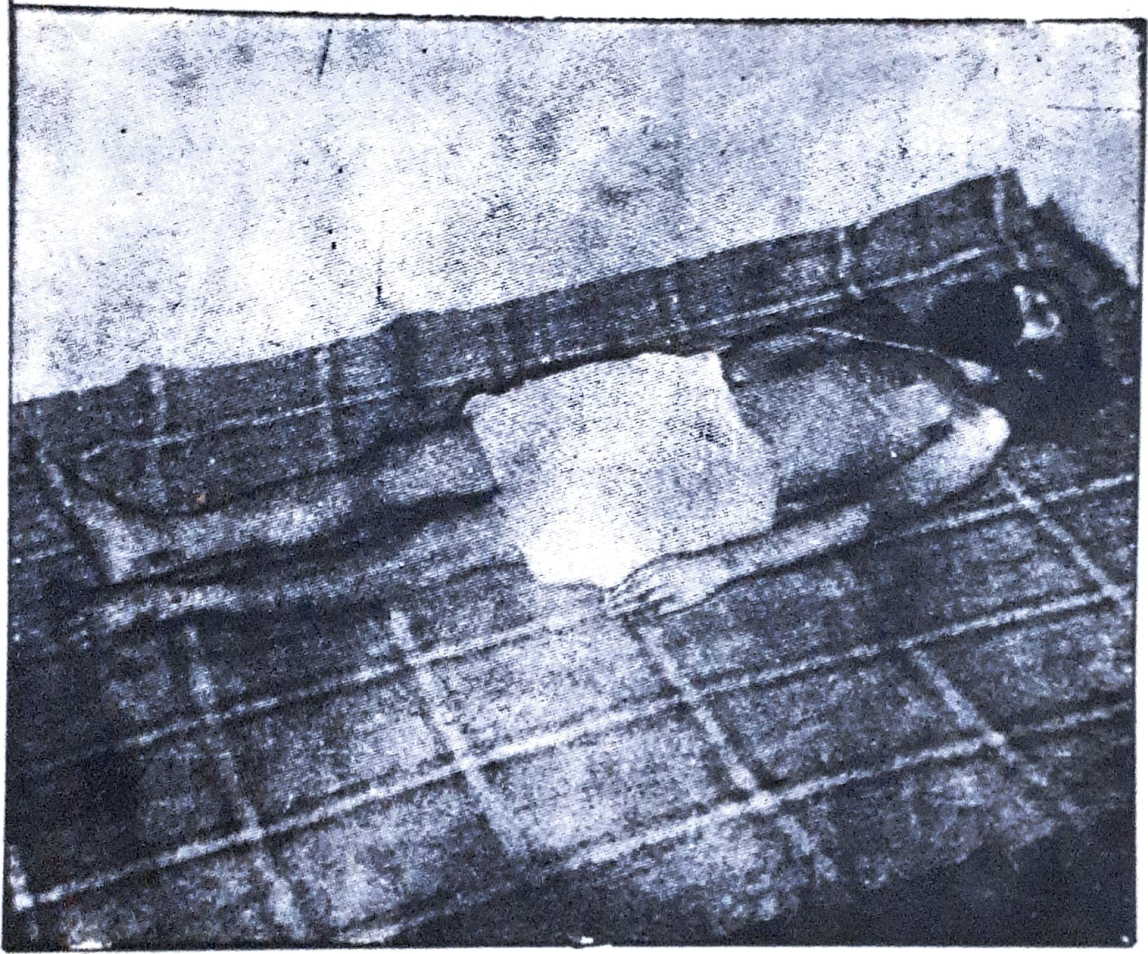
स्वस्थ बच्चे का ध्यान

बच्चे का ध्यान

बाल मचलन करने के बाद इस क्रिया को अवश्य करनी चाहिए। इस क्रिया में अपने शरीर को बिल्कुल स्थिर भाव से ढीला छोड़ दीजिए और शांत भाव से लेटे रहिए। शरीर में कहीं तनाव न रहे। आंख मूँदकर आप कल्पना कीजिए कि आप किसी उद्यान, पार्क या पहाड़ी रमणीक स्थान पर पहुँच गये हैं। ऐसे सुन्दर स्थान को आपने कभी देखा होगा। यदि नहीं देखा है तो कल्पना में ऐसे रमणीक स्थान की रचना कीजिए और ध्यान कीजिए कि उस उद्यान में एक दो या तीन वर्ष का छोटा बालक खेल रहा है। आप भी कल्पना में उस बच्चे के साथ खेलने लगें। पांच मिनट तक इस प्रकार बच्चे का ध्यान कीजिए। इस ध्यान से कुछ दिन में वह बच्चा स्पष्ट दीखने लगेगा और ध्यानकर्ता अपने को भी एक बच्चा महसूस करने लगेगा। यह क्रिया जीवन तत्त्व साधन की प्राणभूत है। इस क्रिया से स्वाभाविक आल्हाद प्राप्त होता है और उसी के फलस्वरूप सभी रोगों की निवृत्ति स्वतः हो जाती है। बाल मचलन व बच्चे का ध्यान दोनों क्रियायें एक दूसरे से सम्बन्धित हैं और दोनों को यथार्थ रूप में करने से प्रसन्नता की प्राप्ति होती है।

इस क्रिया को करने के लिए आप अपने ही लड़के या पोते का ध्यान कर सकते हैं या किसी दूसरे के स्वस्थ हँसते-खेलते हुए बच्चे का ध्यान कर सकते हैं। आपने इस प्रकार बच्चे को बहुधा देखा होगा और उसी को स्मृति पटल पर लाने का अभ्यास कीजिए।

आपने अपने भ्रमण काल में किसी रमणीक उद्यान या पार्क का दर्शन किया होगा। बम्बई में कमला नेहरू पार्क, मैसूर के उद्यान, खजुराहो के मैदान अथवा हिमालय के नन्दन वन का आपने दर्शन किया होगा अथवा किसी चित्र या सिनेमा में ऐसा स्थान देखा होगा। आप उसी रमणीय स्थान में अपने मन को ले जाइये और कल्पना से खेलते हुए बच्चे का ध्यान कीजिए और उसी के साथ स्वयं खेलने लगिये और खेलते-खेलते इतने मग्न हो जाइये कि आपको अपना-स्वरूप भी बालक का ही स्वरूप दिखलाई देने लगे। उस समय आपके शरीर में बालक सुलभ चंचलता हर्षोन्वेग एवं आल्हाद भरा हुआ हो। यही बच्चे के ध्यान की सफलता है। बच्चे के इस ध्यान में जिन बच्चों को देखकर आपके मन में वात्सल्यता के भाव जगे बुद्धि आशीर्वादात्मिका बने इस प्रकार के बच्चों के ध्यान की आवश्यकता नहीं प्रत्युत जिन बच्चों से आपका कोई सम्बन्ध नहीं है केवल मात्र बाल-सुलभ क्रीडा एवं उनकी आल्हाद भरी चंचलता को देखना ही आपका परम लक्ष्य है। उनके आल्हाद में अपने आपको आल्हादित कीजिए और अपने आपको बच्चा समझिए। यही बच्चे के ध्यान की उत्कृष्टता है। इस प्रकार का अभ्यास करते-करते आपको अपना रूप भी बच्चे का ही रूप दिखाई देने लगेगा। ऐसी स्थिति आ जाने पर समझ लेना चाहिए कि यह बाल मचलन क्रिया की सफलता एवं बाल्यावस्था के ध्यान की पूर्ण सफलता है। बाल मचलन और बच्चे का ध्यान, जीवन तत्त्व साधन में सारभूत क्रिया है। इसकी सफलता में ही जीवन तत्त्व साधन की सफलता है। 卐

नाड़ी संचालन

जीवन तत्त्व साधन की आठवीं क्रिया का नाम नाड़ी संचालन है। इसको करने के लिए सीधे बैठ जाइये और अपने पैरों को जितना अधिक से अधिक फैलाया जा सके खोलकर फैलाइये। इस तरह फैलाने पर घुटने के नीचे का भाग और पैर की पिण्डली बिल्कुल जमीन से सटी रहनी चाहिए। दोनों के पैरों बीच का व्यवधान कम से कम सात बालिश्त का होना चाहिए। इस तरह पैर फैलाने के बाद थोड़ा शरीर को आगे की ओर झुका कर दाहिने हाथ की अंगुलियों से बायें पैर के अंगूठे को छुओ और बायें हाथ को एकदम पीछे ले जाओ। उसी प्रकार से फिर दायें हाथ को घुमाकर पीछे ले जाओ और बायें हाथ की अंगुलियों से दायें पैर के अंगूठे को छुओ। इस तरह बराबर चक्राकार घूमते रहो। कहीं रुकने की आवश्यकता नहीं है।

इस क्रिया को पन्द्रह मिनट तक करना चाहिए। इसके करने से गृहणी नाड़ी अपनी यथार्थ स्थिति में रहती है। मन्दाग्नि की निवृत्ति हो जाती है और शरीर की सम्पूर्ण नस नाड़ियाँ सशक्त व सचेत होकर काम करने लगती हैं और शरीर में पूर्ण रूपेण रक्त-रस का संचार होने लगता है। हमारे शरीर के अन्दर नस व नाड़ियों का एक जाल बिछा हैं और उन्हीं के द्वारा शरीर के सभी अङ्गों का संचालन होता है। नाड़ियों के कमजोर होने से अनेक रोग हो जाया करते हैं। इस बात को समझने के लिए शरीर रचना पर विचार करना आवश्यक है।

किसी कार्य का लाभ पूरा-पूरा तब तक नहीं दिखाई नहीं दे सकता जब तक उसको करने वाला उसका कारण और हेतु अच्छी तरह नहीं जान जाता। किसी भी यन्त्र को एक घड़ी ही को लीजिए। उस पर अच्छी तरह ध्यान दीजिए तो आपको मालूम हो जायेगा कि इसके सभी कल-पुर्जे या चक्के अपनी गति के लिए भी एक-दूसरे पर निर्भर हैं और यदि एक स्थान का दांता टूट जाता है या उसका चक्का ढीला पड़ जाता है अथवा यदि वे चक्के जिस धुरी पर घूमते हैं वही खिसक जाती है तो सारे कल पुर्जों के कार्य में गड़बड़ी पैदा हो जाती है और यदि उसका उपचार नहीं किया गया तो अन्त में घड़ी बन्द ही हो जाती है। यदि मनुष्य के बनाये यन्त्र की यह अवस्था है तो ईश्वर निर्मित इस सर्वश्रेष्ठ कारीगरी वाले यन्त्र में भी यही बात लागू होती है।

हमने इस मानव शरीर की उपमा एक यन्त्र से दी है। निःसन्देह यह एक यन्त्र ही है और तब तकतोयहयन्त्र अवश्य है जब तक इसका नित्य का कार्यकलाप चल रहा है। परन्तु यह भी समझ रखना चाहिए कि यह केवल यन्त्र ही नहीं है बल्कि यह एक चैतन्य पदार्थ, एक जीवित शक्ति तथा एक कार्यक्षम, बुद्धि सम्पन्न जीव है। जो मनुष्य अपनी शरीर रचना को जानकर कोई साधन करता है वह अधिक सफलता प्राप्त करता है। जीवन तत्त्व साधन करने वालों को भी इसकी क्रियाओं को करते समय यह भावना करनी चाहिए कि अमुक क्रिया से अमुक अङ्ग सुदृढ़ व सचेतन हो रहे हैं और उनके रोग दूर होकर, अङ्ग-प्रत्यङ्ग स्वाभाविक स्थिति को प्राप्त हो रहे हैं। जीवन तत्त्व साधन की आठवीं क्रिया नाड़ी संस्थान से सम्बन्ध रखती है। अतः उनके बारे में हम विशेष जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करेंगे।

नाड़ी संस्थान—

मानव शरीर में यन्त्रो या तन्तुओं के ऐसे समूह हैं जो साधारणतः कार्य क्रिया करतेहैं, इन्हें संस्थान (System) कहते हैं। इस तरह जो यन्त्र पाचन क्रिया का कार्य करते हैं उन्हें पोषण संस्थान (Digestive System) कहते हैं और इनके अन्तर्गत ही उदर गह्वर, यकृत ग्रन्थियाँ, प्लीहा आदि हैं। अब वे यन्त्र जिनसे गति, भाव या चेतना प्रभृति प्राप्त होती हैं। उन्हें नाड़ी या स्नायु संस्थान (Nervous System) कहते हैं। नाड़ी संस्थान के दो भाग हैं।

(१) सौषुम्न यामा मस्तिष्क मेरुदण्ड सम्बन्धी नाड़ियाँ।

(२) सांवेदनिक नाड़ियाँ (Sympathetic nervous System)।

सांवेदनिक नाड़ियों से पोषण यन्त्र, ग्रन्थियाँ तथा रक्तवाहनियों को स्नायु प्राप्त होते हैं। ये सौषुम्न नाड़ियों से मिली हुई हैं तथा इनके दो धर होते हैं जो कशेरुकाओं के दोनों ओर लगे रहते है। प्रत्येक धड़ में लम्बे-लम्बे नाड़ी के गुच्छे हैं जिन्हें नाड़ो के गंड (Ganglia) कहते हैं। नाड़ी सूत्र के सिरे जो नाड़ी गंड से मिल गये हैं वहीं नाड़ी जाल (Plexuses) है। इन्हीं को चक्र भी कहते हैं। इनका वर्णन हम अगले लेख में करेंगे।

सौषुम्न नाड़ी संस्थान ये हैं :

(१) मस्तिष्क।

(i) बृहत मष्तिष्क (Cerebrum)।

(ii) लघु मस्तिष्क (Cerebellum)।

(२) मस्तिष्क सेतु (Poro Verstic)।

(३) सुषुम्ना
(४) नाड़ीधड़, नाड़ी सूत्र, नाड़ी पुच्छ।

वृहत मस्तिष्क—

दो भागों में बँटा है। इन दोनों भागों के मध्य में एक दरार (Sagital Fissures) रहती है। इसके द्वारा मस्तिष्क दो भागों में बँटता है। उन भागों को मस्तिष्क गोलार्ध (Cerebral hemisphere) कहते हैं। ये दोनों दाहिने और बायें दोनों ओर रहते हैं। दाहिने गोलार्ध को (Right hemisphere) और बायें गोलार्ध को (Left hemisphere) कहते हैं परन्तु ये दोनों भाग भी नीचे से जुड़े हैं। जिस अंश से जुड़े हैं उसे महा संयोजक (Corpus callosum) कहते हैं। वृहत् मस्तिष्क का भीतरी पटल धुमैला या मटमैले रंग के पदार्थ या सेलों से बना है। इसमें कहीं उभार और कहीं गहराई रहती है। उभरे हुए स्थान को क्राँक (Convolution) और गहरे स्थान को सीता (Sulens) कहते हैं। इसका भीतरी भाग सफेद पदार्थ अर्थात् नाड़ी तन्तुओं से बना है। दूसरे अंश को बल्क (Cortex) कहते हैं। मस्तिष्क का बाह्य भाग सेलों से और भीतरी नाड़ी तन्तुओ से बना है। प्रत्येक गोलार्ध का नीचे वाला भाग खोखला रहता है और दोनों गोलार्धों के मध्य में एक पतला पदार्थ सा रहता है।

लघु मस्तिष्क—

इसमें भी दो गोलार्ध होते हैं और यह वृहत् मस्तिष्क के नीचे रहता है। इसमें अनेक सीतायें होती हैं जो ज्यादा गहरी होती हैं। इसके तीन भाग हैं। दो गोलार्ध और नीचे का मध्याँश। इन दोनों के बीच में एक डंठल की तरह (Corpus dentatum) रहता हैं। इसमें तीन स्तम्भ होते हैं।

मस्तिष्क हेतु—

यह लघु मस्तिष्क के सामने का एक गोल घूमा हुआ भाग है। यह सफेद है। यहीं से सुपुम्ना, लघु मस्तिष्क और वृहत् मस्तिष्क में जाने वाली नाड़ियाँ सब निकली हैं। सेतु के नीचे छोटे-छोटे दो गोल दाने होते हैं। ये वृन्त पिण्ड (Corpus mammil!are) कहलाते हैं उसके सामने एक वृहत पिण्ड (Hiphosis), फिर दृष्टि योजिका (Optichiasm) और उसके बाद घ्राण पथ (Medula oblongata) है।

सुषुम्ना—

यह सुई की शक्ल की एक नाड़ी है। इसका लगभग एक इंच लम्बा सिरा ऊपर की ओर है। इसकी मोटाई सर्वत्र एक समान नहीं है। ऊपरी भाग सफेद और भीतरी धुमैला है इसके मध्य में एक छिद्र है उसमें एक नाली रहती है जो मस्तिष्क के चतुर्थ कोष्ठक से जा मिली है तथा इसका दूसरा सिरा मेरुदण्ड की मध्य प्राणाली में है। मेरुदण्ड एक डेढ़ फुट लम्बी हड्डी है और इस समूचे मेरुदण्ड में छिद्र है। इससे नाड़ियों के जोड़े निकले हैं। इसका बाह्य भाग धूसर रंग के पदार्थ से और भीतरी भाग सफेद रंग के पदार्थ से भरा रहता है और मध्य में सोषुम्न पथ है।

नाड़ी या स्नायु—

मस्तिष्क शरीर के विभन्न भागों में संवाद पहुँचाने का काम ये नाड़ियाँ करती हैं। नाड़ियाँ निम्नलिखित भागों में बाँटी गई हैं :—

१. मस्तिष्क नाड़ियाँ (Cranial neve) वे हैं जो लघु मस्तिष्क के भीतर पटल से निकली हैं। इनके दो जोड़े हैं। एक-एक प्रत्येक पार्श्व में रहते हैं।

२. सौषुम्न नाड़ियाँ (Spinal nerve) मेरुदण्ड या सुषुम्ना के दोनों पार्श्वों से नाड़ियों के ३१ जोड़े निकले हैं। इन्हें सुषुम्न नाड़ियाँ कहते हैं।

मस्तिष्क नाड़ियाँ नीचे लिखी हैं :—

[क] घ्राण नाड़ियाँ (Oflatory nerves) इनसे घ्राण शक्ति प्राप्त होती है,

[ख] दृष्टि नाड़ियाँ (Optical nerve) ये चक्षु गोलक के पीछे से घुसती है और चक्षु चित्र पत्र के भीतरी स्तर में फैल जाती हैं। इससे देखने की शक्ति प्राप्त होती है।

[ग] नेत्र चालिनी नाड़ियाँ (Oculomotor nerve) इससे आँख के कोये में गति प्राप्त होती है।

[घ] नेत्र चालिनी द्वितीया (Trachlear) इससे आँख की पलकें ऊपर की ओर उठती हैं।

[ङ] त्रिशाखा नाड़ी (Trigeminal nerves), इससे चेहरा निचला जबड़ा, नाक, मुँह जीभ का दो-तिहाई भाग और दाँत में गति पैदा होती है। इनसे चबाने और कुचलने की शक्ति आती है।

[च] छटा जोड़ा (Abducens) इनसे आँख ऊपर की ओर उठती है।

[छ] मौखिक की नाड़ियाँ (Facial nerves) इनसे खोपड़ी और चेहरे की पेशियों में गति-शक्ति प्राप्त होती है और ये जीभ के लिये स्वाद प्रदान करती है।

[ज] श्रावणी नाड़ी (Auditory nerves) इनसे सुनने में

नाड़ी संचालन

सहायता मिलती हैं तथा स्थिति और शरीर की समता रक्षा में सहायता प्राप्त होती है।

[झ] जिह्वा कण्ठ नाड़ियाँ (Glosso pharyngeal) इनसे कण्ठ की पेशियों में तथा जीभ में रस का स्वाद लेने की शक्ति प्राप्त होती है।

[ञ] दशमी नाड़ियाँ (Vagus nerve) ये दोनों ही बड़ी नाड़ियाँ हैं। इनसे स्वर यन्त्र, टेंटुआ, फेंफड़ा, आमाशय, पाकाशय, यकृत आदि में गति प्राप्त होती है।

[ट] एकादशी नाड़ियाँ (Spinal accessory) यह पीठ और गर्दन की पेशियों को गति देती है तथा कितनी ही माँस-पेशियों में गति शक्ति प्रदान करती है।

[ठ] द्वादशी नाड़ी (Hypoglossal) इससे जीभ की पेशियों में गति मिलती है।

सौषुम्न नाड़ियाँ—

सुषुम्ना से नाड़ियों के ३१ जोड़े निकले हैं। ये सुषुम्ना से दो ओर से जुड़ी हैं और दोनों ओर के छिद्रों से निकलकर समस्त शरीर में फैल गई हैं। जिन दो भागों में जुड़ी रहती है उन्हें पूर्व मूल (Anterior) और पिछले को पश्चिम मूल (Posterior) कहते हैं।

सौषुम्न नाड़ियाँ नीचे लिखी हैं:—

८ कंठ देशीय

१२ वक्ष देशीय

५ कटि स्थानीय
५ त्रिकास्थि स्थानीय
१ गुदास्थि

नाड़ी संस्थान का पूरा हाल चीर-फाड़ के बिना पूरा नहीं मालूम हो सकता, तथापि इनके कार्यों को संक्षेप में बताया जाता है। वृहत् मस्तिष्क में तीन प्रधान कार्य होते हैं :—

ज्ञान, भाव और इच्छा।

मतलब यह है कि लोगों में तब तक ही ज्ञान रहता है जब तक मस्तिष्क जीवित है और यह चेतना मस्तिष्क में रक्त की उपस्थिति पर निर्भर करती है। स्मरण के सभी कार्य मस्तिष्क की क्रिया के ही परिणाम हैं। भाव केवल ग्रहण किया हुआ पदार्थ है। उदाहरण के लिए यदि हम चूना खा जायें तो दर्द होता है परन्तु मस्तिष्क में भी बेचैनी होती है सभी पेशियों की गतियों पर मस्तिष्क का शासन रहता है। हम अपने हाथ को हिलाने या रुक जाने की आज्ञा दे सकते हैं। ग्रन्थियों की क्रिया भी इसी तरह मस्तिष्क की ही क्रिया है। यहाँ तक कि बढ़िया भोजन देखने पर हमारे मुँह में पानी भर आता है। इस तरह की गति को पारावर्तिक क्रिया कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि एक ऐसा भी भाव प्रवण पटल हैं जो मस्तिष्क से अलग है जिसमें जब उत्तेजना होती है तो वह भाव मस्तिष्क में भेज देता है और उसके बाद मस्तिष्क पेशियों व ग्रन्थियों को जैसा आदेश देता है वैसा ही वे कार्य करती हैं। लघु मस्तिष्क रक्त में पेशियों की गति का सहयोग देकर समता की रक्षा करता है।

सुषुम्ना से निम्नलिखत क्रियायें होती हैं :—

१. हृदय की धड़कन।
२. रक्त वाहिनियों में खिचाव बनाये रखना।

३. श्वास प्रश्वास की क्रिया।

४. निगलना, बोलना, लाल स्राव, प्रसव।

मेरूदण्ड से दो क्रियायें होती हैं।

(क) शरीर सम्बन्धी कार्य :

१. पेशियों की शक्ति में बल भरने का कार्य।

२. मल द्वार की पेशी की क्रिया को ठीक रखना।

३. मूत्राशय ग्रीवा व मल द्वार ग्रीवा की क्रिया की रक्षा।

४. जरायु में संकोचन पैदा करना।

५. लिंग में उत्तेजना पैदा करना।

[ख] शरीर के किसी स्थान अथवा यन्त्र से जो भाव या अवस्था मालूम हो उसकी सूचना मस्तिष्क को देना।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे शरीर में जितने क्रिया–कलाप होते हैं उनका शासनकर्ता नाड़ी संस्थान है। यदि नाड़ियाँ शक्तिहीन हो जावें या अपना कार्य सुचारु रूप से न करें तो शरीर के अङ्ग–प्रत्यङ्ग रोगी हो जाते हैं। गठिया वात, वायु पक्षा–घात आदि भयङ्कर रोग हो जाते हैं। नाड़ी संचलन की क्रिया ऐसी प्रभावशालिनी है कि इसको करने से समूचे नाड़ी संस्थान में बिजली की लहर दौड़ जाती है। वे सचेत होकर अपना काम यथार्थ रूप से करने लगती है यदि नाड़ी संस्थान का कोई भाग अकर्मण्य हो गया हैं तो इस क्रिया से वहाँ पर बराबर झटके लगते हैं और थोड़े दिनों में वे ठीक होकर काम करने लगते हैं।

हमारे मेरुदण्ड में हड्डियों की लड़ी जुड़ी हुई हैं जिन्हें केशरुका [Vertebra] कहते हैं। ये संख्या में ३२ हैं अर्थात्

७ गर्दन में

१२ पृष्ठ भाग में
५ कटि प्रदेश में
५ त्रिकास्थि में
३ गुदास्थि में

वैज्ञानिकों का कहना है कि जब शरीर में कोई रोग होता है तो कोई न कोई केशरुकायें विकृत या टेढ़ी हो जाती हैं। योगसाधन में बताया जाता है कि आसन लगाते समय मेरुदण्ड को सीधा रखना चाहिए। जो लोग मेरुदण्ड को झुकाकर बैठते हैं उनकी केशरुकायें विकृत हो जाती हैं। मेरुदण्ड जब तक सीधा व लचीला रहता है तब तक बृद्धावस्था नहीं आती है। अधिक आयु होने पर ये हड्डियाँ कड़ी पड़ जाती हैं और उनमें टेढ़ापन आ जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत एक आस्टोपैथिक चिकित्सा प्रणाली है। इस चिकित्सा पद्धति को जानने वाले भारत में कुछ ही डाक्टर हैं विदेशों में इसके अच्छे-अच्छे डाक्टर हैं और इस प्रणाली के द्वारा बड़े भयंकर से भयंकर रोग भी दूरकिये जाते हैं। आस्टोपैथी वालों का कहना है किशरीर के किसी भाग में किसीप्रकार का रोग होने पर मेरुदण्ड की एक या अधिक केशरुकायें विकृत व टेढ़ी हो जाती हैं और जब तक उन्हें ठीक नहीं किया जायेगा जब तक रोग जा नहीं सकता है। आस्टोपैथी में चिकित्सक रोगी को लिटाकर उसकी मेरुदण्ड की हड्डियों पर हाथ की अँगुलियों से मालिश करता है। रोग के लक्षणों को देखकर चिकित्सक जान लेता है कि कौनसी केशरुका टेढ़ी हो गई है चिकित्सक अपनी कुशल अँगुलियों से उन हड्डियों को यथार्थ स्थिति में ले आता है और धीरे-धीरे रोग दूर हो जाता है। मालिश का कार्य दो चार या दस दिन तक करना पड़ता हैं। रोग की जड़ता के अनुसार उसकी आस्टोपैथिक चिकित्सा की जाती है।

आस्टोपैंथी की चिकित्सा सीखने के लिए डाक्टरो को विदेश जाना पड़ता है तथा चार – पांच साल का कोस पास करके वे इस योग्य बनते हैं कि रोगी का इलाज कर सकें । इसके बाद उनकी अँगुलियाँ इतनी सक्षम् हो जाती हैं कि रोग की जड़ का पता लगा लेवें और उनकी विधिपूर्वक मालिश करके ठीक कर देवें ।

हमारे महा प्र भुजी नेजीवन तत्व साधन की आठवीं क्रिया नाड़ी संचालन का आविष्कार करके यह महान् उपकार किया है कि मनुष्य वगैर किसी आस्टोपैंथ की शरण में गये स्वतः अपना इलाज करके स्वस्थ बन जावे । नियमित रूप से पूर्ण समय तक नाड़ी संचालन की क्रिया करते रहने से विकृत केशरुकायें सीधी व यथार्थ स्थिति में आ जाती हैं और रोग अपने आप दूर हो जाता है । इस क्रिया को बरा-बर करने वाले साधक के मेरुदण्ड की केशरुकायें सीधी बनी रहती हैं और उनमें कोई टेढ़ापन नहीं आता । अतः किसी रोग के होने की सम्भावना नहीं रहती है। यह क्रिया बड़ी विचित्र लाभकारी व प्राणदायिनी है क्योंकि नाड़ी संस्थान के ठीक रहने पर जीवनी शक्ति पर्याप्त रूप में प्राप्त होती है ।
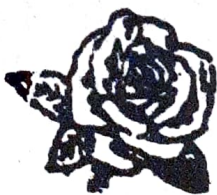
उत्क्षेपण

जीवन तत्त्व साधन की नवीं व अन्तिम क्रिया का नाम उत्क्षेपण है। इसको करने के लिए सीधे खड़े हो जाइये और अपने हाथ व पैरों को क्रमशः झटक दीजिए। पहले दाहिने हाथ व दाहिने पैर को एक साथ झटक दीजिए, फिर बायें हाथ और बायें पैर को एक साथ झटक दीजिए। इसी तरह बारी-बारी से दोनों हाथों व पैरों को झटक देना चाहिए इस क्रिया को केवल एक या दो मिनट तक करना चाहिए। इससे शरीर में एक प्रकार की नई चेतना सी आ जाती है और साधक सचेत होकर यथार्थ स्थिति में आकर अन्य कार्यों के लिए तैयार हो जाता है।

हमारा जो शरीर दिखाई पड़ रहा है वहतो केवल स्थूल शरीर है। इसके अतिरिक्त सूक्ष्म शरीर व कारण शरीर भी हैं। तीनों शरीरों में पाँच कोष हैं। स्थूल शरीर में अन्नमय कोष है तथा सूक्ष्म शरीर में प्राणमय, मनोमय व विज्ञानमय कोष हैं और कारण शरीर में आनन्दमय कोष रहता है। स्थूल शरीर के अङ्गों के सम्बन्ध में हम पिछले लेखों में बता आये हैं। उत्क्षेपण की क्रिया से तीनों शरीरों में सामञ्जस्य उत्पन्न हो जाता है। हाथ-पैरों को झटकने से सूक्ष्म शरीर के तीनों कोषों में चेतना उत्पन्न हो जाती है और वे सक्रिय होकर काम करने लगते हैं। आधार चक्र से लेकर आज्ञा चक्र तक में नवीन स्फूर्ति भर जाती है। हम प्रस्तुत लेख में सूक्ष्म शरीर के तीनों कोषों को विस्तार से समझने का प्रयास करेंगे ताकि उत्क्षेपण से होने

वाले लाभ को जाना जा सके। जीवन तत्त्व साधन की यह क्रिया देखने व करने में बहुत साधारण मालूम देती है किन्तु इसका प्रभाव आश्चर्यजनक। यथाविधि इस क्रिया को करने वाले साधक कुछ दिनों में यह अनुभव करेंगे कि हाथ-पैरों के मामूली झटके कितना प्रभाव दिखाते हैं और सारे शरीर में विद्युत प्रवाह चलने लगती है। अब हम सूक्ष्म शरीर के तीनों कोषों का वर्णन करेंगे।

[१] प्राणमय कोष—

इसमें सब प्राण अपनी शक्ति से अपना–अपना कार्य करते हैं। शरीर के अन्दर पाँच स्थानों में इनका व्यापार होता है। अतएव पृथक-पृथक कार्य करने के कारण इनके पृथक-पृथक नाम निम्न-लिखित हैं :—

प्राण–अपान–समान–व्यान–उदान।

[i] प्राण का कार्य श्वास-प्रश्वास के लिए मुख, नाक, कान, नेत्र तथा फेफड़ों में हुआ करता है।

[ii] अपान का कार्य मल, मूत्र व गर्भ निकालने के लिए लिंगेन्द्रिय व गुदा में हुआ करता है।

[iii] समान का कार्य समस्त शरीर में भोजन पहुँचाने के लिए उदर में हुआ करता हैं।

[iv] व्यान का कार्य रक्त संचालन के लिए समस्त नाड़ियों में हुआ करता है। हृदय से १०१ नाड़ियाँ निकलती हैं। फिर आगे उनमें से एक-एक से सौ-सौ शाखायें निकलती हैं, फिर उनमें से एक-एक से ७२, ७२ शाखायें निकलती हैं, फिर उनमें से एक-एक से हजार-हजार शाखायें निकलती हैं। इस तरह से कुल ७२,

७२,००,००० शाखाओं में व्यान वायु चक्कर किया करती है।

[V] उदान का कार्य शरीर के समस्त कर्मों के प्रभाव को संचित करने के लिए सुषुम्ना नाड़ी में हुआ करता है। उदान वायु मृत्यु के समय सूक्ष्म शरीर को लेकर उड़ जाता है। जिस समय जीव सूक्ष्म शरीर के साथ निकलता है उस समय शरीर के मुख, नाक, कान आदि छिद्रों से निकलता है परन्तु कर्मों का क्षय होने पर जब अकेला निकलता है तो सिर को फोड़कर विद्वत् द्वार से निकलता है। जीव इसी विद्वत् द्वार से शरीर में प्रवेश करता है और तभी कपालं का भाग पोला होता है और डब-डब किया करता है।

इन पाँच प्राणों के अतिरिक्त पाँच प्राण और भी होते हैं।

नाग-कूर्म-कृकर, देवदत्त, धनञ्जय।

नाग वायु छींकना आदि कूर्म वायु संकोचनीय, कृकर वायु क्षुधा तृष्णादि, देवदत्त वायु, निद्रा-तंद्रा और धनञ्जय वायु पोषणादि का कार्य करता है। यदि सभी प्राण व उपप्राण यथार्थ रूप से कार्य करते रहें तो शरीर नीरोग व स्वस्थ बना रहता है। जीवन तत्त्व साधन की क्रियायें सभी प्राणों में नव-चेतना का प्रवाह पैदा करती हैं।

[२] मनोमय कोष—

इस कोष के अन्दर मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार है। योग में चित्त का विशेष स्थान है। चित्त जाग्रत अवस्था में माध्यम होकर स्थूल जगत का सम्बन्ध रखकर आत्मा को समाचार दिया करता है। चित्त की पाँच वृत्तियाँ होती हैं, वे कभी बहिर्मुखी होती हैं, कभी अन्तर्मुखी। पाँच वृत्तियाँ निम्नलिखित हैं :—

उत्क्षेपण

प्रमाण , विपर्यय , विकल्प , निद्रा , स्मृति ।

[i] प्रमाण वृत्ति तीन प्रकार की होती है। प्रत्यक्ष-अनुमान व आगम। जो इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त होता है वह प्रत्यक्ष प्रमाण है। प्राचीन सत्पुरुषों का जो अनुभव शब्दों में संग्रहीत है उसे आगम प्रमाण कहते हैं।

[ii] उल्टा ज्ञान होना विपर्यय है। यथार्थ स्वरूप से भिन्न कुछ का कुछ समझना विपर्यय है। जैसे रस्सी को साँप समझना।

[iii] कल्पना मात्र को विकल्प कहते हैं। वस्तु से शून्य शब्द ज्ञान पर कल्पना करना विकल्प है। जैसे गूलर के फूल की सम्भावना करना तथा शेखचिल्ली की तरह हवाई किले बनाना।

[iv] निद्रा वृत्ति वही है जिसका अनुभव सबको है। निद्रा के समय ज्ञान का अभाव हो जाता है।

[v] पाँचवीं वृत्ति स्मृत्ति है। अनुभव किये हुए विषय का स्मरण करना स्मृति है।

यह सब वृत्तियाँ दो प्रकार की होती हैं। क्लेशकारक और क्लेशनिवारक जैसे अच्छे सद्गुरु के शब्दों पर विश्वास करने से लाभ होता है और ढोंगी के शब्दों पर करने से हानि। योगनिद्रा से आराम व साधारण निद्रा से सुस्ती। अच्छे-अच्छे उपदेशों को स्मरण करने से मनुष्य का अभ्युदय होता है परन्तु दूसरे के दोषों का चिन्तन करने से मनुष्य का पतन होता है।

[३] विज्ञानमय कोष—

इस कोष के अन्दर वे ज्ञान तन्तु समूह आते हैं जिनको चक्र

अथवा [Plexus] कहते हैं। यद्यपि ये स्थूल शरीर के ही अङ्ग हैं, परन्तु आधुनिक विज्ञान को इसका विशेष ज्ञान नहीं है और केवल योग बल ही से इसका हाल जाना जा सकता है। अतः हम इसका वर्णन सूक्ष्म शरीर ही में करेंगे।

मनुष्य शरीर में रहने वाले ज्ञान-तन्तुओं का समूह दो विभागों में विभाजित किया गया है। प्रथम मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी के पोलान में रहने वाला ज्ञान-तन्तुओं का समूह और दूसरा छाती उदर और पेट के पोलान में रहने वाला ज्ञान तन्तुओं का समूह। प्रथम को मस्तिष्क व सुषुम्ना मण्डल और दूसरे को सहानुभूतिक मण्डल कहते हैं। पहला भाग मस्तिष्क से लेकर रीढ़ की हड्डी और उसकी शाखओं में सीमित है। समस्त इन्द्रिय व्यापार इस विभाग के द्वारा होता है। दूसरा भाग छाती, पेट और पेट के नीचे के भागों तक है और शरीर का अन्तर्व्यापार इसका काम है।

मनुष्य का मस्तिष्क भी तीन भागों में विभाजित किया गया है :—

[१] मुख्य मस्तिष्क [Cerebrum] जो खोपड़ी के ऊपर वाले अगले मध्य और पिछले भागों में रहता है। यह स्थान बुद्धि का गोलक है।

[२] गौड़ मस्तिष्क [Cerellum] जो सिर के नीचे वाले भाग में रहता है।

यह ऐच्छिक माँसपेशियों में गति का संचार करता है। यह चित्त का गोलक है।

[३] अधः स्थित मस्तिष्क [Medulla oblongata] जो मेरु-

दण्ड का ऊपरी भाग है। इससे और प्रधान मस्तिष्क से असंख्य ज्ञान तन्तु खोपड़ी के विविध भागों में फैल रहे हैं।

पीठ के बीचो–बीच रीढ़ की हड्डियाँ लम्बी जुड़ी हुई चली गई हैं। इसके बीच में जो पोला भाग है उसमें गुद्दी [Marrow] रहती है। इसमें ज्ञान–तन्तुओं का एक बड़ा भारी समूह रहता है। शरीर के समस्त अवयवों से सम्बन्ध रखने वाले असंख्य ज्ञान-तन्तु इससे निकल कर शरीर में फैले हुए हैं। मेरुदण्ड टेलीफोन का मुख्य तार है और तन्तु जाल उससे सम्बन्धित तार हैं।

दूसरा भाग सहानुभूतिक मण्डल है। इसमें नाड़ी गुच्छक [Ganglia] की दो शृंखलायें मेरुदण्ड के दाहिने व बायें दोनों ओर है। पृष्ठ रज्जु के बीच में जाने वाली जो पोली–सी नली है उसे सुषुम्ना कहते हैं। इनके अतिरिक्त सिर, गर्दन, छाती और पेट में भी स्वतन्त्रापूर्वक रहने वाली ज्ञान-तन्तुओं की ग्रन्थियाँ हैं। इन ग्रन्थियों में से असंख्य सूक्ष्म रेशे निकलकर शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों में पहुँचे हैं। कई स्थानों पर ये तन्तु एकत्रित होकर मिल गये हैं। इन्हीं को चक्र कहतेहैं। मुख्य सात चक्र हैं।

मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध,आज्ञा और सहस्रार।

ये चक्र पाँचों तत्त्वों, पाँचों तन्मात्राओं पाँचों ज्ञानेन्द्रियों, पाँचों कर्मेन्द्रियों, पाँचों प्राणों, अन्तःकरण समस्त वर्णों स्वरों तथा सातों लोकों के मण्डल हैं ओर नाना प्रकार के प्रकाश तथा विद्युत से युक्त हैं। साधारण अवस्था में ये चक्र बिना खिले कमल के सदृश अधोमुख हुए अविकसित रहते हैं। यौगिक क्रियाओं से उत्तेजना पाकर जब ये ऊर्ध्वमुख होकर विकसित होते हैं तब उनकी अलौकिक शक्तियों का

विकास होता है। चक्रों का विशेष विवरण नीचे दिया जा रहा है :—

१—मूलाधार चक्र [Pelvic plexus]

१. चक्रस्थान—गुदामूल से दो अंगुल ऊपर।
२. आकृति—रक्त रंग के प्रकाश से उज्वलित चार पंखड़ी वाले कमल के समान।
३. दलों के अक्षर चारों दलों पर वं, शं, षं और सं।
४. तत्त्व स्थान—चौकोण सुवर्ण रंग वाले पृथ्वी तत्त्व का मुख्य स्थान है।
५. तत्त्व बीज—लं है।
६. तत्त्व बीज की गति—ऐरावत हाथी के समान सामने की ओर जाते हैं।
७. गुण—गन्ध गुण है।
८. वायु स्थान—नीचे की ओर चलने वाले अपान वायु का स्थान है।
९. ज्ञानेन्द्रिय—गन्ध तन्मात्रा से उत्पन्न होने वाली सूँघने की शक्ति नासिका का स्थान है।
१०. कर्मेन्द्रिय पृथ्वी तत्त्व से उत्पन्न होने वाली मलत्याग शक्ति गुदा का स्थान है।
११. लोक—भू लोक है।
१२. तत्त्व बीज का वाहन—ऐरावत हस्ती जिसके ऊपर इन्द्र विराजमान हैं।
१३. अधिपति देवता-चतुर्भुज ब्रह्मा अपनी शक्ति डाकिनी के साथ

१४. यन्त्र—चतुष्कोण-सुवर्ण रंग।
१५. चक्र पर ध्यान का फल—आरोग्यता, आनन्द चित्त, वाक्य, काव्य प्रबन्ध दक्षता।

[२] स्वाधिष्ठान चक्र (Hypogastric Plexus)

१. स्थान—मूलाधार चक्र से दो अंगुल ऊपर पेंड़ू के पास।
२. आकृति सिन्दूरी रंग के प्रकाश से प्रकाशित छः दलों वाले कमल के समान।
३. दलों के अक्षर बं, भं, मं, यं, रं, लं।
३. तत्त्व स्थान—श्वेत रंग, अर्द्ध चन्द्राकार वाले जल तत्त्व का स्थान है।
५. तत्त्व बीज़—बं है।
६. तत्त्व बीज गति—मकर की तरह नीचे की ओर लम्बी गति है।
७. गुण—रस है।
८. वायु स्थान—व्यान वायु का मुख्य स्थान है।
९. ज्ञानेन्द्रिय—स्वाद लेने की शक्ति रसना का स्थान है।
१०. कर्मेन्द्रिय—जल तत्त्व मूत्र त्याग शक्ति उपस्थ का स्थान है।
११. लोक—भुवः है।
१२. तत्त्व बीज का वाहन—मकर जिसके ऊपर वरुण विराजमान हैं।
१३. अधिपति देवता—विष्णु अपनी राकिनी के साथ।
१४. यन्त्र—अर्द्ध चन्द्राकार श्वेत रंग।
१५. ध्यान का फल—सृजन, पालन और निधन में समर्थ तथा जिह्वा पर सरस्वती देवी का होना।

[३] मणिपूरक चक्र (Solar plexus)

१. स्थान—नाभि मूल है।

२. आकृति—नीले रंग के प्रकाश से प्रकाशित दस दलों वाले कमल के समान।

३. दलों के अक्षर—डं, ढं. णं, तं, थं, दं, धं, नं, पं और फं।

४. तत्त्व स्थान—रक्त रंग त्रिकोणाकार वाले अग्नि तत्त्व का स्थान।

५. तत्त्व बीज—रं है।

६. तत्त्व की बीज गति—मेष की तरह ऊपर की गति है।

७. गुण—रूप है।

८. वायु स्थान—समान वायु का मुख्य स्थान है।

९. ज्ञानेन्द्रिय—देखने की शक्ति चक्षु का स्थान है।

१०. कर्मेन्द्रिय—अग्नि तत्त्व से उत्पन्न चलने की शक्ति पैर का स्थान है।

११. लोक—स्वः है।

१२. तत्त्व बीज का वाहन—मेष जिसके ऊपर अग्नि देवता विराजमान है।

१३. अधिपति देवता—रुद्र अपनी चतुर्भुजा शक्ति लाकिनी के साथ।

१४. यन्त्र-त्रिकोण रक्त रंग।

१५. फल—शरीर व्यूह का ज्ञान तथा अजीर्ण आदि रोगों से निवृत्ति।

[४] अनाहत चक्र (Cardiac plexus)

१. हृदय के पास स्थान।

२. आकृति—सिन्दूरी रंग के प्रकाश से भासित बारह दलों वाले कमल के समान।

३. दलों के अक्षर—कं, खं, गं, घं, ङं, चं, छं, जं, झं, ञं, टं और ठं।

४. तत्त्व स्थान – धूम्र रंग, षटकोणाकार वायु तत्त्व का स्थान ।
५. तत्त्व बीज यं है ।
६. तत्त्व बीज गति—मृग की तरह तिरछी गति है ।
७. गुण—स्पर्श है ।
८. वायु स्थान—मुख व नासिका से गति करने वाले प्राण वायु का मुख्य स्थान है ।
९. ज्ञानेन्द्रिय—स्पर्श की शक्ति त्वचा का केन्द्र है ।
१०. कर्मेन्द्रिय वायु तत्त्व से उत्पन्न पकड़ने की शक्ति हाथ का स्थान है ।
११. लोक—महर्लोक है ।
१२. तत्त्व बीज क वाहन – मृग ।
१३. अधिपति देवता—ईशान रुद्र अपनी त्रिनेत्र शक्ति काकिनी के साथ ।
१४. यन्त्र – षटकोणाकार धूम्र रंग ।
१५. फल वाक् पतित्व, कवित्व शक्ति का लाभ, जितेन्द्रिय होना ।

[५] विशुद्ध चक्र (Carotid plexus)

१. स्थान कण्ठ देश ।
२. आकृति—धुँधले रंग से प्रकाशित १६ दलों वाले कमल जैसी ।
३. दलों के अक्षर—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं अः ।
४. तत्त्व स्थान पूर्ण चन्द्र के सदृश गोलाकार आकाश तत्त्व का स्थान ।
५. तत्त्व बीज हं है ।

६. तत्त्व बीज की गति—हाथी की तरह घुमाव के साथ गति है।
७. गुण—शब्द है।
८. वायु स्थान—उदान वायु का स्थान है।
९. ज्ञानेन्द्रिय श्रवण शक्ति श्रोत्र का स्थान है।
१०. कर्मेन्द्रिय—वाक् शक्ति वाणी का स्थान है।
११. लोक – जनः है।
१२. तत्त्व बीज का वाहन—हस्ती जिसके ऊपर प्रकाश देवता आरूढ़ हैं।
१३. अधिपति देवता—पंच मुख वाले सदाशिव अपनी शक्ति शाकिनी के साथ।
१४. यन्त्र—पूर्णचन्द्र के सदृश गोलाकार आकाश मण्डल।
१५. फल—कवि, महाज्ञानी, शांत चित्त, नीरोग, शोकहीन और दीर्घजीवी।

[६] आज्ञा चक्र (Medula plexus)

१. स्थान—दोनों भ्रुवों के मध्य में भृकुटी के भीतर।
२. आकृति—श्वेत प्रकाश के दो दलों वाले कमल के समान।
३. दलों के अक्षर—हं, क्षं हैं।
४. तत्त्व—लिङ्ग आकार महत्तत्त्व हैं।
५. तत्त्व बीज—ओ३म् है।
६. गति नाद है।
७. लोक—तपः है।
८. वाहन—नाद जिस पर लिङ्ग देवता हैं।
९. अधिपति देवता—शिव अपनी शक्ति हाकिनी से साथ।
१०. यन्त्र—लिंगाकार।
११. फल—इस स्थान पर मन व प्राण के स्थिर हो जाने पर सम्प्रज्ञात समाधि की योग्यता होती है। यह चक्र शिव

नेत्र, दिव्य दृष्टि का यन्त्र है ।

[७] सहस्रार चक्र (Cerebral plexus)

१. स्थान तालु के ऊपर मस्तिष्क में ।
२. आकृति—नाना रंग के प्रकाश से युक्त सहस्र दलों वाले कमल के समान ।
३. दलों के अक्षर—'अ' से लेकर 'क्ष' तक सब स्वर और वर्ण हैं।
४. तत्व—तत्वातीत है।
५. तत्व बीज—विसर्ग है ।
६. गति—बिन्दु है ।
७. लोक—सत्यम् है ।
८. वाहन—बिन्दु है ।
९. अधिपति देवता—पर ब्रह्म अपनी महाशक्ति के साथ ।
१०. यन्त्र—पूर्णचन्द्र शुभ्र वर्ण ।
११. फल अमर होना, मुक्ति । इस स्थान पर मन व प्राण के स्थिर हो जाने पर असम्प्रज्ञात समाधि की योग्यता प्राप्त होती है ।

ब्रह्माण्ड में जितनी शक्तियाँ वर्तमान हैं, उन सबको ईश्वर ने शरीर रूपी पिण्ड के इस भाग में (सुषुम्ना) एकत्रित कर दी है, किन्तु इस सुषुम्ना नाड़ी का मुख त्रिकोण योनि मण्डल के मध्य स्थान पर जहाँ से यह मेरुदण्ड के भीतर होती हुई ऊपर की ओर चलती है, साधारण अवस्था में बन्द है । इसी कारण इसकी शक्ति अविकसित रहती है और प्राण शक्ति, केवल इडा और पिंगला द्वारा जो इस त्रिकोण मण्डल के बायें व दायें भाग से ऊपर की ओर चक्रों को छूती हुई चलती है, सारे शरीर में निरन्तर प्रवाहित होती रहती है । इसी त्रिकोण योनि मण्डल में एक अति सूक्ष्म अद्भुत दिव्य शक्ति नाड़ी लिपटी हुई पड़ी है । इसका दृष्टांत एक ऐसी सर्पिणी से दे सकते हैं

जो साढ़े तीन लपेटे खाये हुए अपनी पूँछ को मुख में दबाये शंखाकार होकर सो रही हो। इसी को कुण्डलिनी शक्ति कहते हैं। यह भी सूक्ष्म शरीर का अङ्ग है। कुण्डलिनी के सम्बन्ध में हम पहले विस्तार से बता आये हैं।

यह नाड़ी यदि किसी प्रकार से अपने लपेटों को खोलकर सीधी हो जाय और इसका मुख सुषुम्ना नाड़ी के भीतर चला जाय तो इसको कुण्डलिनी का जागरण कहते हैं। जिस प्रकार सुसज्जित कमरे में बिजली के तार, नाना वर्ण के ग्लोब तथा बिजली के यन्त्र पंखे आदि लगे हों तो बिजली के बटन को दबाने से यह सब क्रमशः प्रकाश देने तथा कार्य करने लगते हैं। इसी प्रकार कुंडलिनी रूपी बटन को दबाने से विद्युत का प्रवाह सुषुम्ना रूपी तार में प्रकाशित कर देता है। जिस-जिस चक्र पर यह कुंडलिनी शक्ति पहुँच जाती है वह अधो मुख से ऊर्ध्व मुख होकर विकसित होता जाता है। जब यह आज्ञा चक्र पर पहुँच जाती है तब सम्प्रज्ञात और जब सहस्रार तक पहुँच जाती है तब असम्प्रज्ञात समाधि की योग्यता प्राप्त हो जाती है।

कुण्डलिनी शक्ति शरीर के शुद्ध और सूक्ष्म होने पर सात्विक विचार, अन्तःकरण, ईश्वर की सच्ची भक्ति और परिपक्व वैराग्य की अवस्था से निश्चल ध्यान से जाग्रत होती है। जहाँ कहीं अकस्मात् किसी मनुष्य में अलौकिक शक्ति, अद्भुत चमत्कार तथा असाधारण ज्ञान का विकास देखने में आवे तो समझना चाहिए कि पूर्व जन्म के किन्हीं संस्कारों के उदय होने अथवा हृदय पर सात्विक प्रभाव डालने वाली अन्य किसी घटना से कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होकर सुषुम्ना के मुख में चली गई है।

जीवन तत्त्व साधन की उत्क्षेपण क्रिया से सूक्ष्म शरीर के सभी

कोषों, नाड़ियों, ज्ञान तन्तुओं तथा चक्रों में उत्तेजना उत्पन्न हो... तथा तीनों शरीरों में सामंजस्य उत्पन्न होकर नव चेतना का संचार होता है।

महाप्रभु द्वारा आविष्कृत इन क्रियाओं की व्याख्या करते समय शरीर रचना के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण देने की आवश्यकता इस कारण पड़ी कि साधक अपने स्थूल व सूक्ष्म शरीर के विविध क्रिया कलापों को समझ सकें और जीवन तत्व साधन की क्रियाओं का अभ्यास करते समय सम्बन्धित अङ्गों पर ध्यान केन्द्रित करते रहें और भावना करते रहें कि हमारे उक्त अङ्ग नीरोग व शक्तिशाली हो रहे हैं और उनमें नव चेतना का संचार हो रहा है।

हर क्रिया के साथ दो वृत्तियाँ बनती हैं। एक क्रियात्मक व दूसरी भावनात्मक। जीवन तत्व साधन की क्रियाओं के साथ भी दोनों वृत्तियों को बनाने की आवश्यकता पड़ती है और तभी पूर्ण लाभ होता है।

अङ्गों के संचालन द्वारा क्रियात्मक वृत्ति बनती है तथा सम्बन्धित अङ्गों के सशक्त व नीरोग होने की विचारधारा से भावात्मक वृत्ति बनती है। जैसे बिजली के **Positive** और **Negative** तारों द्वारा विद्युत धारा प्रवाहित होती है, उसी तरह साधक को अभ्यास के समय दोनों प्रकार की वृत्तियाँ पैदा करनी चाहिए और तभी विद्युत संचार होकर पूर्ण लाभ होता है।

अब हम अनन्त श्री विभूषित योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलालजी महाराज के चरण कमलों में अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए इस लेख को समाप्त करते हैं। 卐

श्री सिद्ध गुफा का परिचय

श्री सिद्ध गुफा योग योगेश्वर सद्गुरु प्रभु श्री रामलाल जी महाराज का सबसे पुराना आश्रम है। नेपाल हिमालय को जाने से पूर्व श्री प्रभु जी ने कुछ समय यहाँ निवास किया था। श्री सिद्ध गुफा उनकी ऐतिहासिक पुण्य स्मृति है। इस गुफा की मिट्टी में श्री प्रभुजी का वरदान है। जो लोग गुफा की पवित्र रज को श्रद्धापूर्वक चाटते हैं वे सभी आधि-व्याधियों से छूट जाते हैं।

यह स्थान आगरा शहर से १५ मील की दूरी पर परगना एत्मादपुर से लगभग एक मील पश्चिम में सवांई गाँव के निकट है। उत्तर रेलवे के स्टेशन टूण्डला जंकशन से सवांई ग्राम तीन मील है। एत्मादपुर से होकर पक्की सड़क गई है।

श्री सिद्ध गुफा बिल्कुल सड़क के किनारे स्थित है। बड़ा ही शांत व रमणीक वातावरण है। आश्रम में स्नान, भोजन व निवास की समुचित व्यवस्था है। यहाँ पर बहुत से ब्रह्मचारी, योग साधक तथा योग शिक्षार्थी रहा करते हैं। एक गौशाला है जिसमें सुन्दर-सुन्दर गौवें रहती हैं।

श्री सिद्ध गुफा पर योग प्रशिक्षण का पूरा प्रबन्ध है। साधकों को नेति, धौति, वस्ति, कपाल भाति, कुंजर, अम्रोली, वज्रोली आदि क्रियायें तथा आसन, मुद्रा, प्राणायाम, ध्यान आदि का शिक्षण दिया जाता है।

श्री सिद्ध गुफा से एक 'सिद्ध योग' नामक मासिक पत्रिका भी निकलती है जिसमें योग सम्बन्धी उच्चकोटि के लेख रहते हैं। 卐